समन्वयमहर्षि दिव्यचक्षु मधुरद्वैताचार्य

श्री गुलाबराव महाराज

परिचय

हिंदी

डॉ. कृष्ण माधव घटाटे

मान्यवरांनी केलेला गौरव

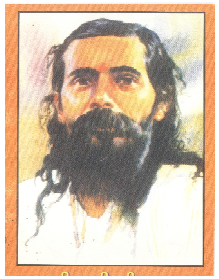

* प्रज्ञाचक्षु श्रीगुलाबरावमहाराज का समन्वय विचार सारे जगत का बंधुभाव जागृत करने में समर्थ है ।

प.पू.श्रीगुरुजी गोळवलकर.

(एप्रिल १९७३)

* श्रीमहाराजजीने इतना सखोल तथा सटीक ज्ञान प्रकट किया है की - गागर में सागर भर दिया है.

भारत के पंतप्रधान श्रीअटलबिहारी.

(दि.२४.९.१९९६)

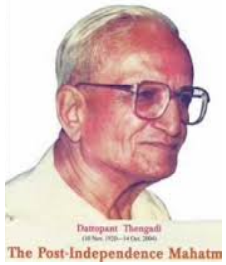

* श्रीमहाराज का सर्वधर्म समन्वयविचार देखकर उनको **समन्वयमहर्षि** कहनाहि उचित है ।

-मा.दत्तोपंत ठेंगडी

भारतीय मजदूर संघके संस्थापक. (लेख. दि.१९८१)

* श्रीगुलाबरावमहाराज की विज्ञान दृष्टी ऐसा कहना उचित नही । **महाराजकी विज्ञानको प्रदान की हुई अध्यात्मदृष्टि,** - ऐसा कहना चाहिए ।

डॉ.विजय भटकर.

- **पद्मश्री, पदमभूषण** संगणक वैज्ञानिक

(महाराजकी विज्ञानदृष्टी- प्रस्तावना)

* श्रीगुलाबरांव महाराज के सारे ग्रंथ सभी भाषामें अनुवादित होकर विश्वके सामने आने चाहिए ।
महाराज का वैचारिक योगदान उन विषयके तज्ञ व्यक्तींयोंके सामने प्रस्तुत हो,
ऐसा प्रयत्न आप करें, यहीं सदिच्छा !

-पंतप्रधान श्री मोरारजी देसाई.

(दि.२०/९/१९७८)

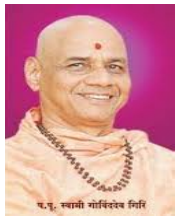

* श्रीगुलाबरावमहाराज कोनसेभी विशेषणमें न बैठनेवाले,
विश्वनें कभीभी न देखें हुए, ऐसे
अद्भुतं रोमहर्षणं व्यक्तिविशेष है ।
वह सारे जगत को वंदनीय होंगे !
और विश्वगुरु होंगे, यह निश्चित है !!!

-पू.स्वामी गोविंद देव गिरी

(श्रीकिशोरजीव्यास)

* विदर्भ में एक छोटेसे माधानग्राम में रहनेवाले,
शिक्षण संस्कार से दूर, चर्मचक्षु से विहीन
एक किशोर बालक,
जागतिक किर्तीके डार्विन-स्पेन्सर जैसे
बडे शास्त्रज्ञकों और तत्वज्ञोंकों
आव्हान देता है,
उनके विचारोंको गलत सिद्ध करता है,
उनका अकाट्य तर्कसे खंडन करता है,
यह कितना बडा आश्चर्य !

-प्रा. श्री रामभाऊ शेवाळकर

(विदर्भके मान्यवर साहित्यिक)

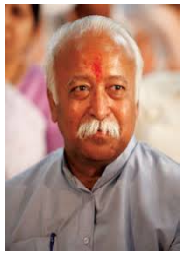

* महाराज नें केवल ३४ वर्ष के आयु में सिर पर किताबोंकी पेटी लेकर,
ग्रामग्राम पैदल चलकर,
जो कष्ट समाजको जागृत करने कें लिए किए,
वह अपूर्व है ।
यह उनका कष्टरूप कर्मयोग है ।
साथमें भक्तियोग भी है ।
देशहितार्थ कार्य करणेवाले प्रत्येक व्यक्ति ने,
महाराज के विचारसागर से,
स्वयंको उचित उपदेश स्विकार करके
समाजका प्रबोधन करना चाहिए ।
भारत के अनमोल विचारवैभव का दर्शन महाराज के द्वारा देखने को मिलता है ।
कठोर कर्मयोग तथा उत्कट भक्तीयोगका समुचित आदर्श समाज के सामने रखा यह असाधारण उदाहरण है ।

-सरसंघचालक श्रीमोहनजी भागवत

(दि.६/७/२०१५)

ऐसे अनेक महानुभावोंने परमस्तुति किये हुए
विश्व-इतिहास कें एकमेव महापुरुष !
- श्रीगुलाबराव महाराज !
हम है सामान्य सेवक !
सामान्य वहाणधर !
भगवान के विग्रह को सुशोभित करनेवाले !
शोभा . . . अति सुंदर !
ऐसे शब्द सुननेके लिऐ आतुर !
श्रीमहाराजका विचारवैभव विश्वके सामने आये,
और
महाराजके विचारधनसे समाज सत्वसंपन्न हो,
इतनीहि मनीषा !

मधुराद्वैताचार्य
योग प्रक्रिया निर्माता
सर्व धर्म समन्वय पीठाधीश

संत श्री गुलाबराव महाराज

(हिंदी चरित्)

श्रीज्ञानेश्वर मधुराद्वैत सांप्रदायिक मंडळ,
दहिसात, अमरावती विदर्भ.

डॉ. कृ.मा.घटाटे

संपर्क :
श्रीरंग घटाटे, गोकुळ बंगला, सीव्हिल लाईन नागपूर.
फोन नं. ०७१२२५३३९९७, मो. नं. ९३७२५२९७७०

प्रसाद-भेट

गीताधर्म
जगतका बायबल होगा,
यह मैं भविष्य करता हूँ.
॥ श्रीगुलाबरावमहाराज ॥

हिंदु धर्म
नष्ट क्यों नही हुआ ?

''अपने धर्मपर बहोत बार आक्रमण हुए किंतु उसमें फिलॉसफी होनेसे वह नष्ट नही हुआ. यदि कभी कभार दुसरे धर्म के विचार अपने धर्म में घुसड भी जाएं तो भी थोडी स्वतंत्रता आते हि फिरसे मूल धर्म स्थापन हो जाता है. फिलॉसफी के कारण दुसरे धर्म के चिरपरिणाम टिक नहि सकते. इसी कारण हिंदुधर्म डुबा नही.''

धर्मान्तर

प्रश्न - सब धर्म समान है तों
अपनेहि धर्म में क्यों रहना ?
उत्तर - सब धर्म समान है तों
अपने धर्म को क्यों छोडना ?

अनुक्रमणिका

युगाचार्यजी को वंदना	२
कार्य का आलेख	३
पूजनीय गुरुजी से - ऋणानुबंध	५
''गागर में सागर''	१२
श्रीगुलाबरावमहाराजके ग्रंथ की सूचि	१५
शतशः प्रणाम !	१७
संत श्रीगुलाबरावमहाराज परिचय	२६
बचपन	२६
शिक्षा	२७
विवाह	२८
विद्या व्यासंग	२८
योगसाधना	२८
दिनचर्या	२९
पुस्तक प्रेम	३०
गाँव से शहर की ओर	३१
कात्यायनी देवी का व्रत	३२
भजनोत्सव	३३
परमार्थ की शिक्षा	३४
पत्नी का चिरविरह	३५
महाराज की आत्माभिव्यक्ति	३७
श्रीज्ञानेश्वरजी का साक्षात् अनुग्रह	३८
ज्ञान संपन्नता	३९
अनेक भाषाओं का ज्ञान	३९
योगशास्त्र पर ग्रंथलेखन	४०
योगियों को चेतावनी	४०
चमत्कार	४०
आत्मविश्वास	४१
लघुत्व से महत्ता	४२
पूर्वकर्म बुरे किन्तु परमेश्वर दयालु	४३
शिक्षा प्रणाली	४४
स्नेहशीलता	४४
विश्वरूप दिखलाने की प्रतिज्ञा	४५
कान उमेठना	४६
अंधपरंपरा	४६
शिष्यपंचायतन को नमन	४७
विद्या का स्त्रोत तथा ग्रंथरचना	४८
आलोचनाओं को उत्तर	४८
विविध भाषाशैलियों में रचना	४९
स्वयं के हि ग्रंथों का मूल्यमापन	४९
गलतफहमियाँ और उनका सामना	५०
'संतों की वाणी' : 'समाधि भाषा'	५४
विपरीत परिस्थितियाँ	५५
राष्ट्रीय जीवननिष्ठा	५७
महाराज की भूमिका	५८
प्रति कलियुग में धर्माचार्य के रूप में आविर्भाव	५८
सर्व धर्मों का आधारतत्त्व	५९
अन्य शास्त्रों के प्रति आदरभाव	६०
अन्य संप्रदायो के प्रति आदरभाव	६१
श्रीगुरु के प्रति आत्यंतिक निष्ठा का आग्रह	६१
महाराज का आवाहन तथा जीवन निष्ठा	६२
'मधुराद्वैत' संप्रदाय की स्थापना	६३
संप्रदाय की रक्षा	६४
मन की कोमलता	६४
संदर्भ टिप्पणियाँ	६६
हिंदुत्व की भीषण पराजय	६७
सर्वव्यापि समन्वय विचार	६८
प्रधानमंत्री अटलबिहारीजी वाजपेयी	६९
मा.दत्तोपंतजी ठेंगडी	७०

युगाचार्यजी को वंदना

प्रज्ञाचक्षु श्रीगुलाबरावमहाराज का जीवनकाल १९ वे शतक के आखिर और २० वे शतक के आरंभ में था। परतंत्रता और पाश्चात्य भोगवाद का प्रभाव सारे हिंदूस्तानपर छा गया था। प्राचीन भारतीयों की विविध ज्ञानक्षेत्र की परंपराएँ, विविध संप्रदायों की परंपराएँ आदि के संबंध में भारतीय मानस संभ्रमित हो गया था। उस ब्रिटिश काल के अंधःकारयुग में सारे ज्ञानक्षेत्रों में महाराजजी ने प्राचीन आर्य परंपराओं की सचाई सामने लानेके लिए सारे ज्ञानक्षेत्रों में स्वयं नया मौलिक योगदान दिया। पाश्चात्य विचारधाराओं का कठोर तार्किक रीति से खंडण किया और भारतीयों के जीन्स में छिपे हुए ज्ञानविज्ञान के वैभव को संजीवनी की गुठी चखाई। स्वयं के विषय मैं महाराज लिखते है –

''प्रत्येक कलियुग में
धर्मविचार की पुनर्स्थापना के लिए
मैं जन्म लेता हूँ''

उसी उपलक्ष्य में विश्वके सारे धर्म वेद-धर्म की शाखाए है ऐसा सप्रमाण सिद्ध करके सर्वधर्मसमन्वय की रीति सीखाई।

तत्त्वज्ञानक्षेत्र में शांकर अद्वैत को भक्ति से अलंकृत करके 'अनध्यस्तविवर्त' का नया आयाम देकर प्राचीन परंपरा के अनुसार खंडन मंडन पद्धति से भक्तिशास्त्र की रचना की।

श्रीमहाराजजी के प्रसिद्धिपराङ्मुखताके कारण हम सबको उनके संबंध में जानकारी नही है. इसलिए उनका यह छोटासा चरित्रपरिचय सब लोगोंके सामने प्रस्तुत करते है.

श्रीज्ञानेश्वर

पदाश्रित
कलिवर्ष ५१०२ ***किशोर व्यास***

कार्य का आलेख

ब्रिटिश काल : विपरीत परिस्थितियाँ

प्राचीन संतों के काल की परिस्थिति बीसवीं सदी की परिस्थिति से सर्वथा भिन्न थी. १९ वे शताब्दी से अंग्रेजों का शासन दृढमूल हो चुका था. हिंदू समाज पाश्चात्यों की भौतिक शास्त्र की उन्नति देख विस्मित रह गया. हिन्दू मन पर हुए संस्कार बदलने लगे. हमारा धर्म और हमारे पुराने शास्त्रों के उपयोगिता के प्रति संदेह का निर्माण हुआ. विद्वानो से लेकर बालक तक हर कोई धर्म की आवश्यकता के बारे में साशंक हो गया. पुराना सब कुछ त्याज्य है और जो नया है वह स्वीकारणीय है, ऐसी गलतफहमियाँ तेजी से फैलने लगीं.

इन परिस्थितियों में महाराज का जन्म इ. सन १८८१ में माधान में हुआ. यह विदर्भ के छोटे से गाँव में भी पश्चिमी विचारों को ध्यान में रखकर भारतीय चिरधारा की सत्यता के बारे में प्रश्न पूछे जाने लगे थे. उम्र के चौदहवें साल से ही उन प्रश्नों का महाराज ने उचित उत्तर देना प्रारंभ किया. बाद में अपनी वाणी का प्रभाव दूर तक फैले इस भावना से वह गाँव छोड अमरावती, नागपुर, रायपुर, हरदा, पुणे, मुंबई आदि स्थानों की यात्रा करते रहे.और पाश्चात्य विचारधारा को काटने के लिए लेखन करना शुरू कियाऔर जीवन के अल्प कालावधि में प्राचीन भारत की विशाल ज्ञानशाखाओं में अवगाहन करने के लिए नवनवीन संकेतदृष्टियों का हिंदुसमाज को योगदान दिया.

- o नाम : गुलाब गोंदुजी मोहोड, इ. स. १८८१ ते १९१५.
- o नववे महिने में प्रज्ञाचक्षुत्व.
- o माधुर्य भक्ति में गोपीभाव : ज्ञानेश्वकन्या और कृष्णपत्नीत्व.
- o शांकर अद्वैत में भक्ति का पूर्ण समन्वय. भक्तिशास्त्र कि निर्मिती और भक्ति के नये १६ प्रकारों का विश्लेषण. ज्ञान, उपासना और भक्ति के सूक्ष्म भेद का विवेचन. माधुर्यभक्ति पर लगाए जानेवाले आक्षेपों का निराकरण तथा सर्वोच्चता का शास्त्रपद्धति से प्रतिपादन. ''भगवान् का सगुण साकार रूप **अनध्यस्तविवर्त'**

है,'' यह नवीन योगदान से शांकरवेदान्त को नया आयाम. नाममहात्म्य के अर्थवाद का सविस्तर खंडन.

- o योगी, ज्ञानी व भक्तों के सूक्ष्म भेदों का विश्लेषण. तीनों की समाधि अवस्था एक किंतु व्युत्थान के दशा में अलग अलग अनुभूति.
- o धर्म आणि तत्त्वज्ञान समन्वय के ९ प्रकारों का विवेचन.
- o षड्दर्शन परस्पर विरोधि नही बल्कि पूरक है इसका नए संदर्भ में विवेचन.
- o पाश्चात्य और भारतीय मानसशास्त्रों की तुलना.

- o ॲलोपॅथी और आयुर्वेदकी तुलना; मानसायुर्वेद की निर्मिती.
- o इस्लाम, ईसाई, पारशी, बौद्ध, जैन, अदि सब वैदिक धर्म की शाखाएं है इस सिद्धान्त का शास्त्रीय प्रमाणों से तथा युक्तिवाद से मूलगामी विवेचन.
- o परमार्थ मे होनेवाली बुवाबाजी का भण्डाफोड.
- o धर्मसंकर, धर्मसुधारणा और धर्मसमन्वय का भेद विवेचन.
- o वेद, वेदान्त और पुराणों ९ सूत्रग्रंथों की रचना.
- o आर्यो के प्राचीन न्याय-वैशेषिक दर्शन आधुनिक फिजिक्स, केमिस्ट्री के मूल स्रोत है इसका युक्ति और प्रमाणसिद्ध प्रतिपादन. और भौतिक विज्ञान के पुनर्विकास के संबंध मे मार्गदर्शन.
- o मनोविज्ञान, काव्यशास्त्र, संगीत, आयुर्वेद आदि शास्त्रों का षड्दर्शनानुसार प्रस्तुतीकरण.
- o इतिहास कैसा और किसने लिखना चाहिए? और कोनसे इतिहास पर विश्वास रखना चाहिए? इस विषय में मौलिक मार्गदर्शन.
- o आर्य वंश नही है, वे बाहरसे नही आए और शूद्रवर्ण आर्योंकाहि हिस्सा है इस ऐतिहासिक सिद्धांत का प्रमाणपुरस्सर युक्तिओं से प्रतिपादन. लो. टिलकजी के उत्तरध्रुवीय मतका खंडन.
- o आर्यसंस्कृति ३,००० सालपूर्व विश्वव्यापक थी, यह परम ऐतिहासिक सत्य की पुनर्स्थापना.
- o डार्विन, स्पेन्सर, ॲनीबेझंट आदि पाश्चात्य उत्क्रांतिवाद का खंडन
- o समाजकार्य, सुधारणा, बहुमत, लोकशाही, शिक्षण, पारिवारिक संबंध आदि विषयों में नए मूलभूत विचारों का योगदान.
- o प्राचीन वैदिक संगीत से अर्वाचीन संगीत की तुलना, भातखंङेजी का खंडन और पत्राचार.
- o प्राचीन धारा से नवीन काव्यशास्त्र का निर्माण. व्याकरण पर सूत्ररचना, नए १२३ मात्रावृत्त तथा लघुलिपी की निर्मिती. आत्मचरित्र, नाटक का लेखन, मोक्षपट आदि खेल से परमार्थप्राप्ति का उपाय. ऐसे विविधता से भरे हुए असंख्य विषयों पर संत गुलाबरायजीने भारतीय परंपराओं से प्रेरणा लेकर बडे विस्तार से लेखन किया है.
- o कुल मिलाकर १३३ ग्रंथों की संस्कृत, हिंदी, मराठी, वैदर्भीय लोक भाषा और व्रजभाषा मे रचना की है. उनमे -
- o वैदिक महर्षियों के समान ९ सूत्र ग्रंथों की रचना है. और -
- o संस्कृत मे २१ ग्रंथ तथा संस्कृत में ११ पत्र है.
- o अभंगसंख्या २०९९, पदों की संख्या २२५२, गीतों की संख्या १२५०, श्लोक १०००, ओवी वृत्त मे २३०००, पृष्ठसंख्या लगभग ६०००.

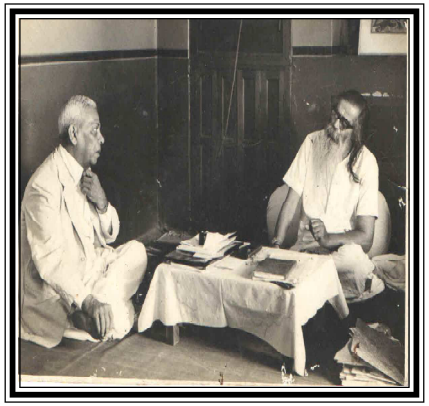

श्री. बाबासाहेब घटाटे और परमपूजनीय गोळवलकर गुरूजी

पूजनीय गुरुजी से ऋणानुबंध

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक परम पूजनीय गुरुजी गोळवलकर हमारे परिवार के निकटतम थे. बचपन में हम उनकी ही गोद में पलकर बडे हुए. हमारे घर का कोई भी कार्य हो, गुरुजी के बिना पूरा होता ही न था .

इ.सन 1939 साल में आद्यसरसंघचालक पूजनीय डॉ. हेडगेवारजी ने रक्षाबंधन के अवसर पर पूजनीय गुरूजी को सरकार्यवाह और मेरे पिताजी बाबासाहेब घटाटेजी को नागपूर संघचालक नियुक्त किया । पिताजीने पचास सालतक अपना दायित्व निभाया । तभीसे पूजनीय गुरूजीका कौटुंबिक स्नेह हमें मिला।

ऐसे थे हमारे निकट के संबंध! मेरे इस प्रबंध की रूपरेखा पूरी होने के कुछ दिनों बाद पूजनीय गुरुजी हामरे घर आराम करने आए थे तो मेरे अध्ययन के बारे में आस्था व्यक्त की.

'श्री गुलाबराव महाराज के साहित्य पर मैं पीएच. डी. के लिये प्रबंध लिख रहा हूँ,' यह जानकर उन्हें बडी प्रसन्नता हुई. उन्होंने बतलाया कि वे स्वयं भी महाराज के संप्रदाय के बहोत समीप हैं और कहा -

''मै मॅट्रिक के अध्ययनकाल में आदरणीय मुळे मास्टरजी के घरपरही मैं रहता था. वे श्रीगुलाबरावजी के परम शिष्य थे. वृद्धावस्था के कारण उन्हे कम दिखाई देता था. इसी कारण उनको मैंने महाराजजी के उस समय प्रकाशित हुए सारे ग्रंथ पढकर सुनाए हैं. यह मेरा सौभाग्य था''

उन्होने प्रबंध की रूपरेखा स्वयं देखी और कहां -

''आगे तूं जो कुछ लिखेगा उसे मैं जरूर पढूंगा.''

कहना यह है कि गुरुजी की इस उत्सुकता में प्यार ही झलक रहा था. इस संप्रदाय से गुरुजी का संबंध उनके विद्यार्थी काल से था. महाराज के शिष्य श्री मुळे मास्टर (नागपुर के नीलसिटी हाईस्कूल के हेडमास्टर) के घर पर गुरुजी जब विद्यार्थी थे तब से रहते थे. उसी प्रकार महाराज के वारिस (उत्तराधिकारी) श्रीबाबाजी महाराज पण्डित के भी गुरुजी रिश्तें में कुछ लगते थे और गुरुजी की माताजी - श्रीमती ताईजी का श्रीबाबाजी महाराज पर गुरुभाव था. इन सभी ऋणानुबंधों के कारण उन्हें मेरे प्रबंध का विषय पसंद आया था.

गुरुजी - ''महाराज के साहित्य पर लिखना बडा कठिन कार्य है पर अब निश्चय ही कर लिया है तो पीछे न हटना.''

मैं - ''महाराज ने नानाविध विषयों पर काफी लिखा है. खंडन करते समय किसी के प्रति मुलाहिजा नही रखा. लेकिन समय आनेपर फिर उसी का समन्वय भी बतलाते है. तो इसकी संगति कैसी?''

गुरुजी हँस पडे और कहने लगे - ''अरे, पढने वाला तूं! तुम्हें ही संगति की खोज करनी है. महाराज के ग्रंथों को पढे काफी समय बीत चुका है. किन्तु अध्ययन करते समय एक बात अवश्य ध्यान में रखना कि - जो कुछ खंडनमंडन महाराज करते हैं वह द्वेष भावना से नहीं है. तुम संशोधक लोग अपने विचार इन साधु-संतों पर लादकर उनके बारे में संशोधन के नाम पर चाहे जो लिख डालते हो! इसे टालना होगा.

महाराज यदि किसी व्यक्ति का एक स्थल पर खंडन करते हैं तो दुसरी ओर व उसकी सराहना भी करते हैं. इसका अर्थ स्पष्ट है कि उनके मन में किसी प्रकार का दूजा भाव नहीं था. महाराज को धर्मदृष्टि से या वेदान्त दृष्टि से भक्तिदृष्टि से जो गलत लगा उसे वे काटते है और उचित बातों का स्वीकार भी करते है. उन्होंने भिन्न-भिन्न धर्मोंका, मतों का, अद्वैत दृष्टि से स्पष्ट युक्तिवाद के आधार पर खंडन किया है. किन्तु लोगों में परस्पर विद्वेष न फैले इसलिये वे दोनों की परस्पर समन्वय की दिशा भी देते है. अपने विचारों को वे समतोल के साथ ही साथ तुलनात्मक रीति से भी

रखते हैं. स्वयं क्षात्र कुणबी जाति में जन्म पाकर भी अपने ही जाति-बंधुओं की द्वेषग्रस्त युक्तियों की उन्होंने कठोर चिकित्सा भी की है. परस्पर विरोधि जान पडने वाले विचारों को आमने-सामने रखा है. और भारतीय समाज में 'जाति-भेद' न होकर 'जाति-व्यवस्था' की ओर संकेत किया है. इस समाज के विभिन्न घटक आपस में विरोध न करे इसलिये वे महत्वपूर्ण 'समन्वय विचार' का प्रतिपादन करते हैं.''

''यह समन्वय विचार देश में प्रचलित सामाजिक बंधुभाव के लिये महाराज द्वारा प्रदत्त तात्त्विक अधिष्ठान है. इस समन्वय विचार के दूरदेशी परिणाम हो सकते हैं. मुसलमान, ईसाई, पारसी, बौद्ध, इत्यादि जगत् के सभी धर्म के प्रमुख तत्त्व, (ऐतिहासिक दृष्टि से इनसे भी प्राचीनतर हिन्दू संस्कृति मे अर्थात्) वैदिक तथा आर्यसंस्कृति में भी किस प्रकार मूलरूपेण उपलब्ध हैं यह उनका विवेच्य विषय था. इस बारे में उन्होंने महत्त्वपूर्ण दिशा भी दिखलाई है.''

''महाराज का समन्वयविचार इतना प्रभावपूर्ण है कि यदि उसके अनुसार प्रबोधन कार्य सम्पन्न होता है तो सिर्फ भारतीय समाज ही एक नहीं होगा वरन् संसार के सारे धर्मों के समाज परस्पर सामंजस्य के साथ रह सकेंगे. तुम्हारे प्रबंध में इस विषय की चर्चा विस्तार से होनी चाहिए.''

देखते ही देखते गुरुजी के द्वारा प्रतिपादित, महाराज के समन्वय सूत्र का यह सामाजिक आयाम मुझे हमेशा के लिए याद रह गया.

ऐसे ही एक एक प्रसंग पर मैं अभिभूत हो गया था. उनकी मर्मस्पर्शी प्रतिभा के इस दर्शन से उनके लिये मेरा आदरभाव दिन प्रति दिन बढता ही गया.

भक्तिशास्त्र के प्रकरण में महाराज द्वारा प्रतिपादिन भक्ति के सोलह प्रकारों का वर्णन मैंने किया है. एक संदर्भ श्लोक में नवविधा भक्ति में आदर्श भक्त किसे कहते हैं इसके बारे में लिखा है. वह श्लोक सर्वप्रमाणित है. उसमें आत्मनिवेदनात्मक भक्ति का आदर्शभक्त के रूप में बलिराजा का नाम लिखा गया है. वह श्लोक है -

''देवस्यात्मनिवेदने बलिरभूत सर्वस्वसंपूजने''

महाराज के प्रतिपादन के अनुसार आत्मनिवेदन के दो घटक हैं - ममतासमर्पण और अहंतासमर्पण. इन द्विविध घटकों को बलिराजा अपने जीवन में कैसे अनुस्यूत कर लेता है, कम से कम इस श्लोक से वह कैसे ध्वनित होता है यह मैं जान नही पाया था. गुरुजीने तुरंत ही यह सुलझा दिया और 'सर्वस्व' शब्द का अर्थ खोलकर मेरे समक्ष रख दिया था.

गुरुजी - ''सर्व का अर्थ है ममताभरे सभी पदार्थ; और स्व का अर्थ है - '' शरीरसहित मैं - पूर्ण रूप से अहंभाव !''

''बलिराजा ने भगवान् वामन के दो कदमों में अपने स्वर्ग आदि पूरे राज्य की भूमि को और स्वर्ग को दान के रूप में दे दिया था. अपने पास कुछ भी शेष न रखा. इसे ममतासमर्पण कहते हैं.''

''अगला तीसरा कदम अपने मस्तक पर धरने के लिए बलिराजा ने कहा. इसका अर्थ यह हुआ कि उसने प्रथम दो कदमों में ममताभरे सभी पदार्थ ईश्वर को समर्पित करके तीसरे कदम पर सशरीर स्वयं का अर्थात् पूरे अहंभाव का समर्पण किया. उन दोनों प्रकारों के मिलन से आत्मनिवेदन पूरा हुआ. इन दोनो प्रकार की भक्ति का आदर्श रूप महाराजा बलि है. इस भाव को इस श्लोक में स्पष्ट किया गया है.''

एक दूसरे ही अवसर पर, साधुओं की भोंदूगिरी पर 'इलस्ट्रेटेड वीकली' और ऐसी ही दूसरी पत्रिकाओं और समाचारपत्रों में प्रकाशित हुई थी. वह सचित्र जानकारी मैंने पुरे संदर्भों के साथ लिखी थी. गुरुजी को यह बिल्कुल भला न लगा. उन्होने समझाया-

गुरुजी - ''यह क्या? तुम्हारे प्रबंध में साधुओं की भोंदूगिरी पर तात्त्विक चर्चा का आना मैं समझ सकतां हूँ, परंतु साधुओंकी ऐसी व्यक्तिगत आलोचना इस प्रबंध मे भली नही है.''

मेरे प्रबंध के मार्गदर्शक प्रा. श्री. मा. कुलकर्णीजी ने भी इस हिस्से को न लिखने की सलाह पहले ही दी थी, और गुरुजी ने भी वही समझाया.

महाराज के इतिहास संबंधी दृष्टिकोण को प्रतिपादित करना मेरे लिए बडा ही कठिन कार्य रहा. आर्यों के इतिहास के बारे में इतने विपुल संदर्भ उपलब्ध हैं कि क्या लिया जाए या क्या छोडा जाए, यह तय करना ही कठिन है. प्रकरण के कच्चे मसौदे को तैयार किया, शायद मार्च, १९७३ का समय था. गुरुजी का स्वास्थ भी

दिन प्रति दिन कर्करोग के बढनेसे गिरता जा रहा था. वे बहुत देर बैठ नहीं पाते थे और नही पढ पाते थे. इस समय गुरुजी का ख्याल रखनेवाले डॉ. आबाजी थत्ते को आसपास न देखकर मैं गुरुजी से मिलने जाता था. मात्र श्री कृष्णरावजी मोहरील हाथ से इशारा करते थे ''गुरुजी के पास जाओ''. कृष्णराव मेरे प्रति वात्सल्य इसी तरह से व्यक्त करते थे.

एक दिन ५०- ६० पन्नों का इतिहास का प्रकरण लेकर मैं गुरुजी के आवास में गया. उन्हें देखकर मन में विचार आया कि ऐसी दशा में गुरुजी से पढने के लिए कहना अमानवीय ही है और साथ ही मन में संकोच हो रहा था कि मैंने उत्तर ध्रुव के बारे में गुरुजी के विचारों से भिन्न मत लिखा है. उसे पढकर वे क्या सोचेंगे? पर मन को यूँ तसल्ली भी थी कि मेरी भूल होगी तो गुरुजी मुझे समझाएँगे और मुझे अपने मत में परिवर्तन करना होगा. इन सबसे ज्यादा उत्सुकता मुझमें थी कि इस विरोध पर गुरुजी की प्रतिक्रिया कैसी होगी. इसी मानसिकता मे कमरे मे प्रवेश किया. गुरुजी को नित्य के समान हँसमुख और प्रसन्नचित्त देखकर मन हल्का हुआ. गुरुजी ने सामान्य रूप से पूछताछ की और मैंने उन्हें सारा लिखित दे दिया. उस दुःखपूर्ण रुग्णावस्था में पढने के लिये २-३ दिन तो अवश्य लगेंगे ही, यह सोचकर २-३ दिनों बाद मैनें जाना निश्चित किया. किंतु दूसरे ही दिन कृष्णराव मोहरीलजी का फोन आया - ''भैय्या, अब तक तूं आया नहीं? गुरुजी तुझे याद कर रहें हैं.''

मैं तुरंत ही कार्यालय पहुँचा. साढें तीन या चार का समय था. डरते हुए कमरे में प्रवेश किया. गुरुजी स्वस्थचित्त थे.

उन्होनें सस्मित कहा - 'सुबह से तुम्हारी राह देख रहा हूँ.'

मैंने संकोचवश होकर कहा - 'आपकी तबियत ठीक नहीं है. सोचा, पढने में दो दिन तो लगेंगे ही, इसलिए कल आने की सोच रहा था.'

गुरुजी - 'अरे, मैंने तो कभी का पढ रखा था. पूरे दो ढाई घंटे बैठा और एक साँस में ही पढ डाला.'

मन मे विचार कौंधा, ऐसी कमजोर हालत में मैंने गुरुजी को परेशान तों नही किया.

गुरुजी- 'यह विषय बहोत महत्त्वपूर्ण है. इसका प्रतिपादन अच्छी तरह से होना चाहिए. वैचारिक समतोल न रहा तो इतिहासज्ञ

ध्यान ही नहीं देंगे.'

मैं - 'गुरुजी, एक बात पूछनी है. मैंने इसमें आपके विचारों से अलग विचार लिखे हैं. - उत्तर ध्रुव पहले ओडिसा में था; यह विचार मुझे ठीक नहीं जँचता. ऐसा मानने पर लोकमान्य तिलकजी के विचारों को सत्य मानने जैसा है. और वह हमारे प्राचीन ग्रंथों के साक्ष्यों के प्रति अनास्था होगी. प्रथमतः आर्यवंशी जन उत्तर ध्रुव पर ही रहते थे. उस समय अन्यत्र कहीं भी आर्यों की बसावट नहीं थी. आर्य शब्द वंशवाचक है आदि एकांगी निर्णयों को मान लेना होगा.

जागतिक स्तरपर भिन्न-भिन्न स्थलों के उत्खननों में उपलब्ध अवशेषों से स्पष्ट है कि सारे संसार में आर्य संस्कृति के प्राचीन अवशेष आज भी उपलब्ध हो रहे है, तब उनको अस्वीकार किस तरह किया जा सकता है?'

गुरुजी - 'अरे, लोकमान्य तिलकजी के अनुसार उत्तर ध्रुव आज के स्थान पर हो या ओडिसा में हो, कुछ विशेष अंतर नहीं पडता. महाराज का सिद्धांत इन दोनों मतों से महत्वपूर्ण है, व्यापक है, और निश्चय ही वह सच्चाई के अधिक निकट भी है. जब उत्तर ध्रुव पर आर्य थे अर्थात् उसी समय सारे विश्व में भी आर्य संस्कृति ही थी. यही आर्यों की विश्वव्यापक संस्कृति है.

उसी तरह आर्य यह वंश है इस संकल्पना को भी पाश्चात्य पण्डितों ने भी गलत साबित कर दिया है. कुल मिलाकर यह का जा सकता है कि महाराज के सिद्धांतों के अनुसार भी आर्योंका उत्तरध्रुव के परिसर मे निवास संबंधी विचार सर्वथा असत्य नहीं, वरन् एकांगी हैं. आजतक इस विषय पर कई नए संशोधन हुए हैं. उनका भी संदर्भ और विश्लेषण इस प्रकरण में ले सको तो अच्छा रहेगा.

उन्होंने इस संदर्भ मे लिखी हुई पुस्तक के नाम याद करने की कोशिश की फिर अंत में कहा -'अब याद भी दगा देती जा रही है. कल-परसों आना. पुस्तकों के नाम याद आएँगे तो बता दूँगा. इस प्रकरण में तुमने महाराज के 'समयोपदेश' पुस्तक से बहुत कुछ उद्धृत किया है. यह ग्रंथ नया जान पडता है. मैंने पढा नहीं है. उसमें वर्णित महाराज के विवेचन का अच्छी तरह से अध्ययन कर नए प्रमाणों के आधार पर यह विषय सशक्त रीतीसे से प्रतिपादित करना होगा.

'अभयं सत्व संशुद्धिः' . . . !!' किसी के प्रति मन में भय

बनाए रखने की कोई वजह ही नही है. इतिहास के अध्ययन की दिशा तो स्वयं महाराज ने ही दिखला दी है. उसी का आधार लेकर 'लिखने योग्य' और 'करने योग्य' बहुत कुछ है. हमारा तो अब कुछ शेष नहीं रहा, अब तुम ही करो. किसी प्रकार की अतिशयोक्ति न करते हुए, सत्य का पक्ष व्यवस्थित रूप से व्यक्त होता है, तो लोगों का विरोध अपने आप शांत होने लगता है. लोगों को कम से कम दुखी करके अपने विचारों को व्यक्त करो. अब इस विषय को हाथ में ले ही लिया है तो पीछे मत हटना.''

यूँ कहते-कहते गुरजी ने मेरी पीठ थपथपायी और कहने लगे -

''डरो मत, आगे बढो.''

मेरे प्रबंध के संदर्भ में गुरुजी के ये अंतिम शब्द थे! उसके बाद उनका स्वास्थ कमजोर होता ही गया. आखीर 'काव्यशास्त्र' और 'प्रथम प्रकरण' उन्हें दिखलाना शेष रह गया.

शरीर कैंसर से पीडित था, नजर उस पार स्थिर हो चुकी थी, परंतु गुरुजी के मुखमंडल पर मंद स्मित कभी लुप्त नहीं हुआ. तीक्ष्ण स्मरण शक्ति से भरपूर गुरुजी का दशावधानी व्यक्तित्व कहाँ और मुझ जैसा सामान्य शिक्षार्थी कहाँ? मैंने उनकी पुस्तक में वर्णित विचारों का खंडण किया, पर उन्हें क्रोध नहीं आया. इसके विपरीत उन्होंने महाराज प्रणित विचारों को सुचारु माना. बडे प्यार से और बडी सहजता से मेरा उत्साह को बढावा दिया. महाराज के विचारों के सामने अपनी अल्पज्ञता का स्वीकार भी सहर्ष किया. यह कैसी उदार वृत्ति थी!

''लघुत्वाचे नि मुद्दले, बैसला गुरुत्वाचे सेले'' *(ज्ञानदेव)*

ऐसे लघुत्वसे प्राप्त हुए गुरुत्व के उत्तुंग व्यक्तित्व का दर्शन अब नही रहा, और प्यार से पीठ थपथपाना, वह भी नहीं रहा!

निरंतर स्फूर्ति देने वाले उनके अंतिम शब्द - 'डरो मत, आगे बढो'

कानों में गूँजते रहते है. समय समय पर उनके निरपेक्ष स्नेह का स्मरण तीव्रता से होता है !

- डॉ. कृ. मा. घटाटे

'गागर में सागर'

- प्रधानमंत्री अटलबिहारीजी वाजपेयी

गुरुपौर्णिमा,
मा. पंतप्रधानजी का निवास स्थान,
दिल्ली : २६-७-१९९९

''आज के इस पावन पर्वपर श्रीगुलाबरावमहाराज के जीवनी का प्रकाशन और विमोचन का शुभ कार्य हो रहा है. यह अनेक भाषाओं में अनुवादित होकर सारे पाठकों तक पहुंचना चाहिए.

श्रीगुलाबरावमहाराज इतिहास के जिस काल में हमारे में आए वह काल १९ वें शताब्दीका अंत और २० वें शताब्दीका प्रारंभ था.

उस समय भारतीय समाज में आत्मग्लानी की भावना पैदा करनेका प्रयास किया जा रहा था. पश्चिम का प्रभाव बढ रहा था.

इस अवसर पर संतों की एक मालिकानें हमारे बीचमें अवतरित होकर राष्ट्रीय निष्ठाओं को बनाएं रखा. उन्होंने आत्मविस्मृति हटाकर एक राष्ट्रीय चेतना पैदा की. यह चेतना सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्रों में पहले निर्माण हुई. इस चेतना से समाज को बल मिला और समाज की निष्ठाएं शक्तिशाली हुयी. भक्ति और आत्मविश्वास फिरसे लौटे, (भलेहि हम अपने स्वाधीनता को खो चुके थे) क्यों कि हमारी संस्कृति और हमारी जीवनपद्धति जिस प्रकारसे गढी गयी है, वह किसी भी संकट का सामना करनेके लिए समर्थ है.

छोटीसी उमर में, गरीब घर में जन्म लेकर, जन्मके थोडे महिने बाद आखों की दृष्टि खो बैठने के पश्चात् भी श्रीगुलाबराव महाराजने जो कुछ योगदान दिया है, वह सचमुच में आदि शंकराचार्य महाराज की स्मृति को ताजा करनेवाला है.

समाज के लिए लेखनी उठाना और बोलकर ग्रंथों को तय्यार करना, ऐसे वह ग्रंथ लिखवाते थे. ग्रंथ में शास्त्रशुद्ध पद्धति से विषयों का प्रतिपादन; तथा खंडन करते हुए भी उनकी समन्वय की दृष्टि थी.

उन्होने भक्ति और अद्वैत का अंतर मिटाया.

ज्ञान, कर्म, भक्ति इन विषयों की हम चर्चा करते है उनका गीता में विशद रूप से उल्लेख आता है.

ज्ञान कठिन है.
ज्ञान गंभीर है.
ज्ञान शुष्क भी होता है.
ज्ञान कोरा अभिमान भी पैदा करता है.
कर्म कठिन कार्य है.
कर्म के प्रति आसक्ति होती है.
फिर उसके साथ फलपर भी दृष्टि रहती है.
लेकिन् –
भक्ति इन दोनोंसें अलग खडी है.
उस में कुछ प्रप्ति का भाव नही है.
वह रसामृत से भरी हुयी है.
उस मे शुष्कता नही है.
सारे भेदों को मिटाती हुई भक्ति की लहर चलती है.

हम अपने इतिहास पर नजर डालें तों जब जब समाज का मानस कुंठित हुआ था - या थोडा निराशा में डुबा था, तों सारे देश में, केवल एक भाग में नहि, देश के सभी भागों में, सभी भाषाओं में एक भक्ति की लहर उठी थी. लोगों का मनोबल बढा था. भक्ति साहित्य की लहर से लोगों को शक्ति दियी थी.

यह शक्ति भगवान् से जुडी थी, इसलिए भक्त प्रार्थना करता था कि, ''जिन गुणों का समुच्चय हम भगवान् में देखते है, उसमें से एक अंश, एक छोटासा अंश, हमे भी प्राप्त हो.''

इस भाव से समाज को बडी शक्ति मिली.

श्रीगुलाबरावमहाराजने मधुर भक्ति की बात की. चिंतन की एक नयी दिशा खोली. भक्ति केवल एकात्मक नहि किन्तु सर्वात्मक है. इसी के कारण सारे समाज मे जागृति पैदा हुयी.

मैं यह पुस्तक देख रहा था. बडे परिश्रम से जोशीजीने इस पुस्तक का लेखन किया है.

इसे एक संयोग ही मानना चाहिएं, कि माननीय मोरारजी भाई प्रधानमंत्री थे, यहीं पर जब श्रीगुलाबरावमहाराज के बारे में एक छोटासा प्रकाशन उन्हों नें किया था, तब भी मैं उपस्थित था. डॉ. घटाटे भी यहां कहीं उपस्थित है. (२०-९-७८)

इस पुस्तक में लिखा है कि श्रीगुलाबरावमहाराजने उनके गृहस्थाश्रम की तथा गृहकलह की भी चर्चा की है. गृहकलह से शायदही कोई बच पाता है.

महाराजने किया हुआ पाश्चात्य अपसिद्धान्तों का खंडन यह एक अभ्यास का विषय है. किंतु खंडन करतें समय भी समन्वय की दृष्टि उन्होंने

कभी नही छोडी.

फिर भी अभिनव चिंतनपद्धति से पाश्चात्यों के गलत विचारों का उन्होंने खंडन किया.

मैं सामने एक छोटीसी पुस्तिका देख रहा हूं.

पिछले पन्नेपर लिखा है कि उनको सर्वधर्मसमभाव के उपलक्ष्य में प्रश्न पूछा गया था -

''यदि सर्व धर्म समान है तों अपनेहि धर्म में क्यों रहना? सर्व धर्म समान है तों किसी और धर्म में जा सकते है''

श्रीगुलाबरावमहाराजने उत्तर दिया कि -

सभी धर्म समान है तों अपने धर्म को छोडकर जानेकी क्या जरूरत है?''

कितना सहज और सटिक उत्तर है !

जैसा - गागर में सागर भर दिया है.

लोग सर्वधर्मसमभाव का हमें बहोत उपदेश देते है - वों तो हमने गुट्टीसे पिया है. इसके लिए हमे बाहर से उपदेश लेने की आवश्यकता नही है. लेकिन ''परधर्मो भयावहः'' है. अपने धर्म पर डटे रहना यह भी एक शिक्षा है, यह भी संस्कार है.

इस तरह की बहुतसी सामग्री आपको इस पुस्तक में मिलेगी. इसलिए मैं प्रकाशक का बडा आभारी हूं.

''मधुराद्वैत'' एक गंभीर अध्ययन का विषय है. यह पुस्तक जों मराठी में है सों अन्य भाषाओं में भी आनी चाहिए. है. महाराज के विचारोंपर चर्चा होनी चाहिए. श्रीगुलाबरावमहाराज के हमारे उपर बहोत ऋण है. सभी भाषाओं में इनके बारे में जानकारी होनी चाहिए. और वह सभी दूर पहुंचेगी ऐसा विश्वास है.

आज के इस पावन पर्व पर परम पूजनीय रज्जुभैय्याजी कि उपस्थिति है जिससे आज के गुरुपौर्णिमा का महत्व भी बढ गया. वो इलाहबाद में विज्ञान के प्राध्यापक के रूप मे थे. बहोत से हमारे मंत्रीमंडल के सदस्य उनके शिष्य थे. मैने विज्ञान पढा नही और यदि पढता तों उनका शिष्य होनेसे मै भी सौभाग्य तथा गौरव का अनुभव करता. उनके उपस्थिती के लिए बहोत बहोत धन्यवाद !

- इति शम् ॥

०००

श्रीगुलाबरावमहाराजके ग्रंथ की सूचि

अनुक्रम			यष्टी
सूत्रग्रंथ			
१.	अन्तर्विज्ञानसंहिता	(सं) य	१६
२.	ईश्वरदर्शनम्	(सं) य	१६
३.	समसूत्री	(सं) य	१६
४.	दुर्गातत्त्वम्	(सं) य	१६
५.	काव्यसूत्रसंहिता	(सं) य	१६
६.	शिशुबोधव्याकरणम्	(सं) य	१६
७.	न्यायसूत्राणि	(सं) य	१६
८.	एकादशीनिर्णयः	(सं) य	१६
९.	पुराणमीमांसा	(सं) य	१६
आकर ग्रंथ			
१०.	संप्रदाय सुरतरु, (भा. १-२)	य	११
भाष्यग्रंथ			
११.	नारदीयभक्त्यधिकरण-न्यायमाला	(सं) य	१६
१२.	भक्तिसूत्रभाष्यम्	(सं) य	१६
१३.	भक्तिसूत्रभाष्यम् भाष्य	(सं) य	१६
१४.	प्रियलीलामहोत्सव (भागवतभाष्य) निमंत्रणविलास	य	१४
१५.	प्रियलीलामहोत्सव (भागवतभाष्य) आमंत्रणविलास	य	१४
१६.	श्रीधरोच्छिष्टपुष्टिः	(सं) य	१६
१७.	श्रीधरोच्छिष्टपुष्टिलेशः	(सं) य	१६
१८.	ब्रह्मसूत्रव्याख्या	य	१५
१९.	निगमांतसुभा	य	१५
२०.	ब्रह्मसूत्रांवर निरूपणे	य	१८
२१.	भगवद्गीतासंगति	य	१
२२.	मनोहारिणी (हिन्दी)	य	१८
२३.	गीतेवरील निरूपणे	य	१७
२४.	गीतेवरील प्रवचने	य	१७
२५.	गीतेवरील निरूपणे	य	१८
२६.	गीतेवरील स्फुट निरूपणे	य	१८
२७.	ऐश्वर्यार्थदीपिका (ईश्वरगीता)	य	१५
२८.	षट्पद्ध्वनिः	(सं) य	१६
२९.	ईशावास्योपनिषद्	(सं) य	१६
३०.	ऋग्वेदटिप्पणी	(सं) य	१६
३१.	चौसष्टी	य	१
३२.	चिरंजीवपदाभ्यास	य	२
३३.	बालवासिष्ठ	(सं) य	१६
३४.	योगवासिष्ठ तत्त्व	य	१७
३५.	योगवासिष्ठ निरूपणे	य	१८
शास्त्रग्रंथ			
३६.	सुखवरसुधा	य	१३
३७.	वेदान्तपदार्थोद्देशदीपिका	य	१३
३८.	शास्त्रसमन्वयः	(सं) य	१६
३९.	आगमदीपिका	(सं) य	१६
४०.	युक्तितत्त्वानुशासनम्	(सं) य	१६
४१.	प्रेमनिकुंज	य	१०
४२.	शांतिसुधाकर	य	२
४३.	वेदान्तप्रक्रियासमुच्चय	य	१५
४४.	वेदान्तनिरूपण	य	१५
४५.	तत्त्वबोधः	(सं) य	१६
४६.	षड्दर्शनलेशसंग्रहः	(सं) य	१६
भक्तिग्रंथ			
४७.	भक्तिपदतीर्थामृत (तत्त्वमसि)	य	१
४८.	निगमांतपथसंदीपक	य	१
४९.	भगवद्भक्तिसौरभ	य	२
५०.	प्रीतिनर्तन	य	२
५१.	नित्यतीर्थ	य	२
५२.	प्रिय पाहुणेर	य	२
५३.	भक्तितत्त्वविवेक	(सं) य	१६
५४.	प्रियप्रेमोन्माद	(सं) य	१६
५५.	गोपिकापादपीयूषलहरी	य	१५
५६.	गोविंदानंदसुधा	(सं) य	२
योग			
५७.	निदिध्यासनप्रकाश	य	१
५८.	ध्यानयोगदिवाकर	य	२
५९.	सोपानसिद्धि	य	२
६०.	हिरण्ययोग (स्वप्नयोग)	स	१५
६१.	योगांगयमलक्षण	य	१५
६२.	योगप्रभाव (पद्य)	य	१५
६३.	योगप्रभाव १-२ (गद्य)		
६४.	ज्ञाने. कुंडलिनीजगदंबा निरूपण.	य	१५
सांख्य			
६५.	सांख्यसुरेंद्र	य	१४
६६.	सांख्यतत्त्व सूत्रावरील विचार	य	१५
६७.	सांख्यसार एक निबंध	य	१५
६८.	सांख्यसार	य	१८
संगीत			
६९.	छंद प्रदीप	य	१५
७०.	गानसोपान	य	१५
आयुर्वेद			
७१.	मानसायुर्वेद	(सं) य	१६
७२.	मानसायुर्वेद	(मराठी) य	१५
७३.	मिषगिंद्रशचीप्रभा	(सं) य	१६
७४.	वैद्यवृंदावन	य	१५
प्रकरणग्रंथ			
७५.	स्वमतनिर्णयः	(सं) य	१६
७६.	संप्रदायकुसुममधु	(सं) य	१६
७७.	सच्चिन्निर्णयः	(सं) य	१
७८.	कांतकांतावाक्यपुष्पम्	(सं) य	२
७९.	चित्तोपदेश	य	२
८०.	सद्वैजयंती	य	२
८१.	बाराखडी	य	२
८२.	त्रिकांडसार	य	२
८३.	प्रमादकल्लोळ	य	१५
गाथा			
८४.	अभंगांची गाथा	य	९
८५.	पदांची गाथा	य	९
निबंध			
८६.	अलौकिक प्रवास	य	२
८७.	अमोघनिरूपण	य	२
८८.	बौद्ध निबंध	य	१५
८९.	वेदान्तनिरूपण	य	१५
९०.	सिद्धिसार	य	१५
९१.	अलौकिकाख्यानमाला	य	५
९२.	युक्त्या	य	१७
९३.	गुरुचरणकौमुदी	य	१८
९४.	निरूपण	य	१७
संवाद			
९५.	साधुबोध	य	८
९६.	मणिमंजुषा	य	१२
९७.	सुवर्णकण	य	१७
९८.	स्वमंतव्यांश-सिद्धान्ततुषार	य	६
९९.	दुर्महृदयभंजन	य	१५
१००.	प्रश्नोत्तरे	य	१५
१०१.	वृत्तिक्षीरसागर	य	१५
१०२.	बालबुद्धिविवर्धिनी	य	१७
पत्रे ११८			
१०३.	अकरा पत्रे	य	१
१०४.	वीस पत्रे	य	२
१०५.	अडतीस पत्रे	य	७
१०६.	सत्तेचाळीस पत्रे	य	१२
१०७.	एकपत्र	य	१५
लोकगीते			
१०८.	स्त्रीगीते	य	४
१०९.	स्त्रगीतसंग्रह	य	४
११०.	तुंबडी	य	२
१११.	रुक्मिणी स्वयंवर	य	९
११२.	रुक्मिणी पत्रिका	य	९
स्तोत्रे			
११३.	ज्ञानेश्वर-मातृपितृ-भावनाष्टक	य	२
११४.	कृष्णपंचपदी	य	२
११५.	गुरुपंचपदी	य	२
चरित्र - आख्याने			
११६.	आत्मचरित्र	य	१५
११७.	सूचना प्रकरण	य	१
११८.	सूचना प्रकरण	य	२
११९.	अभंगात्मक १९ आख्याने	य	९
१२०.	पदात्मक ७ आख्याने	य	९
१२१.	पतिव्रताचरितामृत	य	१५
विविधरचना			
१२२.	सुखपर्व (नाटक)	य	१५
१२३.	मात्रामृतपानम्	(सं) य	१६
१२४.	पत्नीप्रेमपराग	(चरित्र)	
१२५.	नवीन भाषा - 'नावंग'	य	१६
१२६.	शब्दकोष	य	१५
१२७.	सांकेतिक भाषा (लघुलिपी)	य	१५
१२८.	मोक्षपट (क्रीडा)	य	१५
१२९.	हरिपाठाच्या प्रतिज्ञा	य	१५
१३०.	हरिपाठाचा अर्थक्रम	य	१५
१३१.	मायर्सवरटीपा	य	१५
१३२.	शिक्षणरत्नाकर (अप्रकाशित)	(चरित्र)	
१३३.	ज्ञानपाठ	य	९ पू.

(जीवन : आषाढशुद्ध दशमी /६-जुलै-१८८१ ते २०-सप्टेंबर १९१५/भाद्रपदशुद्ध वामन-द्वादशी)

समन्वय महर्षि श्रीगुलाबराव महाराज को

शतशः प्रणाम !

'सारस्वत-जन्मभूः'
इस कीर्तिकरी शब्दोंसे परिचित,
विदर्भ की भूमी में अवतरित,
अलौकिक प्रतिभासंपन्न विभूती,
मधुराद्वैताचार्य श्रीगुलाबराव महाराज !
देहात मे जन्मे महाराजजीने, चर्मचक्षुहीन और अल्पायुषी होने पर भी
विशाल वैचारिक साहित्यसंपदा निर्माण करी .और
वह अक्षर-पुष्पमाला
भारतमाता के चरणोंपर समर्पित की !
दिव्यचक्षू श्रीगुलाबराव महाराजका
युक्तीसे समझाने की दृढ प्रतिज्ञा थी.
वे एकमेव बुद्धिनिष्ठ संत थे !
वे वैदर्भीय धरोहर के रूपमें
समुचे विश्व को प्राप्त है !
श्रीवेदव्यासजी का स्मरण दिलानेवाली
सर्वस्पर्शी सिद्धप्रज्ञासंपन्न श्रीगुलाबरावमहाराज.

.....

'तया सिद्ध-प्रज्ञेचेनि लाभे ।
मनचि सारस्वते दुभे ।
सकळ शास्त्रे स्वयंभे । निघति मुखे'

(ज्ञानेश्वरी)

योगेश्वर ज्ञानेश्वर महाराज का मातृरूप मे दर्शन करनेवाले श्रीगुलाबराव महाराजजी कौन थे ?

परिचय

१ **वेद-द्रष्टा** : समाधि में वेदोंका दर्शन करनेवाले द्रष्टा.
२ **वेद-श्रोता** : समाधिस्थिति मे वेदमंत्र के श्रोता.
३ **वेद-मीमांसक** : आन्तर्विरोधाभास के समन्वयकर्ता.
४ **अपौरुषेय वेदोंकी** : युक्ति तथा प्रमाणोसे सिद्धी करनेवाले
५ **पुराणमीमांसक** : पुराण वाक्यों का समन्वयक ग्रंथ रचयिता
६ **सूत्रकार** : ९ सूत्रग्रंथ निर्माते महर्षि.
७ **आकरग्रंथ** : संप्रदादायसुरतरू के रचयिता

धर्माचार्य : समन्वयमहर्षी

८ धर्मसमन्वयके **९ प्रकार** किये.
९ सर्व-धर्म-उत्पत्ति के **मूल-प्रक्रिया** का विश्लेषण किया.
१० **सर्वधर्मोका अधिष्टान** रज-तम-नाश और सत्वगुणकी वृद्धी यही है यह बताया.
११ विश्वके **'सर्व धर्म वैदिक धर्मकी शाखाए है'** यह सिद्ध किया.
१२ इस्लाम-ख्रिश्चनादींका वैदिक धर्मसे साम्य स्पष्ट किया.
१३ धर्मस्थापक के अपरिहार्य ४१ लक्षण बताए.

भक्ति के आचार्य

१४ देवर्षि नारदजीकी आज्ञासे भक्ति-धर्मकी स्थापना के लिए प्रत्येक कलियुगमें अवतरते है.
१५ गोकुलके महा-रास में अपने अनुग्रहितोंको ले जाते है.

भाष्यकार आचार्य

१६ भागवत,सांख्यसूत्र,योगसूत्र,संतवचनादींपर भाष्य किया.
१७ षड्दर्शनों के भाष्यकार आचार्य थे.
१८ वेद-पुराण-धर्म-दर्शन-शास्त्र और संतवचनोंका विरोध-परिहार करके समन्वय किया.

मधुराद्वैताचार्य

१९ मधुराद्वैत-दर्शन के उद्घाटक थे.
२० सगुण-साकार-एकदेशीय प्रतीत होनेवाला भगवद् देह पूर्ण रूपसे सच्चिदानंद ब्रह्म है यह युक्ति और प्रमाणोंसे सिद्ध किया
२१ यह भगवद्विग्रहको **'अनध्यस्तविवर्त'** यह नई संज्ञा देकर शांकर-अद्वैतको ज्ञानोत्तर माधुर्यभक्तीसे मधुर किया.

२२ उपासना- ज्ञानपूर्व और भक्ती- ज्ञानोत्तर होती है, ऐसा सिद्ध किया.

२३ 'तत्वमसि' यह महावाक्यसे अद्वैतज्ञानके बाद पराभक्तीका स्थान है, यह सिद्ध किया.

२४ पराभक्ति यह *सर्वभाव-समावेशक,*सर्वश्रेष्ठ, *विषयभावरहित है और **'तत्-सुख-सुखित्व'**पर अधिष्ठित है यह स्पष्ट किया.

२६ सच्चिदानंद के आनंदांश पर भक्तिकी स्थापना की.

२७ भक्तीके १६ प्रकार स्पष्ट किए.

***ज्ञानपूर्व-उपासना** : श्रवणसे सख्यभक्ति तक - ८ प्रकार.

***ज्ञानोत्तर-मध्यमा :** आत्मनिवेदनसे लालन तक - ४ प्रकार

***ज्ञानोत्तर-पराभक्ति** : माधुर्यभक्तिक २.संयोगके और २.वियोगके मिलकर ४ प्रकार.

२८ परब्रह्मका **अस्फुरण** याने **ज्ञान** और **स्फुरण** याने **भक्ति,** यह समझाया.

सांख्यदर्शन : ५ ग्रंथ

२९ **सेश्वर-सांख्य** की सिद्धी की.

३० सांख्य और **योग,** सांख्य और **वेदान्त,** परस्पर पूरक और समन्वित है यह भी सिद्ध किया.

योगदर्शन : ८ ग्रंथ

३१ अनेक नवनवीन योगप्रक्रियों की निर्मिती की.

३२ कुंडलिनी-चक्र इत्यादि संबंधी आधुनिक अभ्यासकों का भ्रम दूर किया.

३३ योगसाधनामें वेदमंत्र सुननेकी प्रक्रिया बताई.

३४ नई योग-सूत्र-संहिता की निर्मिती की.

३५ वेद और विश्व की सभी भाषा, अर्थ के तरफ एकाग्र होने से आकलन होती है यह स्वानुभव कथन किया.

न्यायदर्शन से विज्ञानशोध

३६ न्यायके प्रत्यक्षखंडके अध्ययनसे आर्य-विज्ञानके विकासकी दिशा दर्शाई.

३६ न्यायदर्शनप्रणीत विज्ञानकी प्रगति करने के लिए आस्तिक-नास्तिक सबको एक होनेका आवाहन किया.

३७ सभी लेखन-प्रतिपादन न्यायघटित युक्तिवादसे किया.

पूर्वमीमांसा : २ ग्रंथ

३८ पूर्वमीमांसा दर्शनके वे आचार्य थे. दो सूत्रग्रंथ लिखे.

आयुर्वेद : ६ ग्रंथ

३९ मानसायुर्वेदादि ८ ग्रंथों की निर्मिती की.

४० नया मूलभूत 'द्रव्य-गुण-सिद्धांत' प्रतिपादन किया.

४१ ॲलोपथीके जंतुकारणवादका खंडन करके आयुर्वेदका मनोविकार-कारणवाद सिद्ध किया.

४२ किस मनोविकारसे कौनसा रोग और किस रोग से कौनसा विकार उद्भूत होता है; इसकी जानकारी दी.

शिक्षा : शिष्य

४३ **'सुसंस्कारोंका दान याने शिक्षा'** ऐसा शिक्षाका सारभूत लक्षण बताया.

४५ शिष्योंपर अपार प्रेम था.

४६ शिष्यका अवमान कदापि सहन नही किया.

४७ स्वशिष्योंको नमन करके मंगलाचरण में स्थान देनेवाले वे **पहलेही महापुरुष थे.**

संगीत : २ ग्रंथ

४८ संगीतशास्त्र निर्माण किया. '**गानसोपान**'

४९ पूर्ण रसास्वाद के लिए **संगीत-चतुष्टय** का महत्व बताया.

५० गानसोपान ग्रंथ में **मार्गी** और **देशी संगीत** का सुस्पष्ट विवेचन किया.

५१ संतोंके भक्ति संगीतकों मार्गी याने वैदिक संगीतका दर्जा प्रदान किया.

५२ नयी १२८ वृत्तों की रचना की.

५३ नवीन छंदों के रचनाकार थे. **छंदप्रदीप**

५४ पं.भातखंडेजीका **'महर्षि-विरोध'** किमपि सहन नही किया. अपितु कठोर भाषा मे खंडन तथा निषेध किया.

काव्यशास्त्र - सूत्ररचना

५५ **'काव्यसूत्रसंहिता'** निर्माण की.

५६ स्वयं **कवी** थे,

५७ **काव्यज्ञ** थे,

५८ **गायक** थे,

५९ **काव्यशास्त्रके निर्माता** भी थे

भाषा

६० **त्रिभाषासूत्र :** संस्कृत-मातृभाषा-राजभाषा ये तिनों को आत्मसात करनेका सबको आवाहन किया.

६१ नयी **नावंगभाषा** निर्माण की.

६२ नावंगभाषाका **व्याकरण** भी निर्माण किया.

६३ नवीन **सांकेतिक-लघु-लिपी** का निर्माण किया.

६४ भाषा में होनेवाले **दोष** वर्णन किये.

६५ **नये शब्द** निर्माण किये. (अनध्यस्तविवर्तादि)

६६ अंग्रेजी शब्दोंके लिए तत्काल **पर्याय शब्द** निर्माण किये.

६७ **संस्कृतमें ११ पत्र** लिखे.

६८ संस्कृतमें ४१ गेय पदोंकी रचना की.

६९ संस्कृतमें **स्तोत्ररचना** की.

७० संस्कृतमें **कीर्तन** किया.

क्रीडा

७१ खेल-खेल में परमार्थ प्राप्तीकी प्रक्रिया निर्माण की.
*उपनिषदादि शास्त्रीय आधारसे **मोक्षपट** निर्माण किया.
*सांप-सिढी के रूपमें **उपनिषदादि से स्थानयोजना** की.

मनोविज्ञान

७२ मानसशास्त्रको नयी भारतीय दृष्टी दी.

७३ मनोविश्लेषण से उन्नतीका मार्ग बताया.

७४ मानस-शक्ति का अनुभव दर्शाया.

७५ भारतीय मत और मेस्मेरिझम आदि पाश्चात्य मतोंका तौलनिक मूल्यमापन किया.

दांभिकता तथा बुवाबाजी

७६ चमत्कारोंका प्रखर और मर्मभेदी वाणीसे निषेध किया.

७७ महंतोके बुवाबाजीका दंभस्फोट किया.

७८ ढोंगी साधूको प्रश्न पूछनेके लिए **'प्रश्नकदंब'**ग्रंथ लिखा.

७९ 'अमानित्व' के लिए स्वयंका अपमान करवाते थे.

८० अनाहूत श्रोता तथा प्रेक्षकोंकी भीड देखतेही वह स्थान छोड देते थे.

इतिहास

८१ इतिहासको नयी दृष्टि दी.

८२ *इतिहास कैसा लिखा जाए, *किसने लिखना चाहिए तथा कौनसे इतिहासपर विश्वास रखे, इसका समुचित मार्गदर्शन किया.

८३ स्व-उत्कर्ष-बोधक इतिहासही क्यों सिखाया जाए, इसका मर्म बताया.

आर्य

८४ आर्य-शब्दका अर्थ : ''सुसंस्कृत मनुष्य'' इतनाही है, वंशवाचक नहीं, यह ऐतिहासिक सत्य समर्थ युक्तिवादसे सिद्ध किया.

८५ आर्य भारतमें बाहरसे आये इसका समूल खंडन किया.

८६ आर्य बाहरसे भारतमें आये या भारतसे बाहर गये, यह दोनों मतोंका याने आगमन-निर्गमन मत का पूर्ण रूपसे खंडन किया

८७ विश्वव्यापक आर्यसंस्कृति का सिद्धांत प्रतिपादन किया.

८८ तीन हजार वर्षापूर्व सर्व जगत् में एकमेव आर्य संस्कृतीही थी, यह सप्रमाण सिद्ध करनेवाले पहलेही महापुरुष थे.

८९ शूद्र-वर्ण आर्योंका एक हिस्सा है, यह प्रमाणित किया.

९० पाश्चात्योंने किया हुआ हिंदुसंस्कृतिका विकृतीकरण खत्म करनेके लिए पूर्णरूपसे मार्गदर्शन किया.

विज्ञान

९१ आधुनिक विज्ञान के लिए नवदृष्टिदाता बने.!

९२ न्यायशास्त्रके अनुसार आधुनिक विज्ञान में शोध कैसे लगाये जाए,सोदाहरण विवेचन किया.

९३ आधुनिक शास्त्रोंका मूल भारतीयही है यह दिखानेके लिए वैदिक-प्रमाण-पुरस्सर कैसे ग्रंथ लिखने चाहिए इसका सोदाहरण मार्गदर्शन किया ।

९४ चर्मचक्षुहीन होने के बावजूद भारतीयोंका अथांग विचारवैभव अपने लेखनसे प्रगट किए.

विश्वोत्पत्तीकी प्रक्रिया

९५ **ब्रह्म-वृत्ति-स्फुरणसे विश्वोत्पत्ति :** यह मूलभूत विश्वनिर्मितीकी प्रक्रिया प्रथमतः विस्तारसे प्रगट की.

९६ **ब्रह्मवृत्तिस्फुरणकी परिणती** प्रथमतःपृथ्वीतत्त्वमें और अंतमें सगुण-साकार भगवद् विग्रहतक याने **''अनध्यस्त-विवर्त''** तक ले जानेवाले श्रीगुलाबराव महाराजही है.

पाश्चात्य मतोंची समीक्षा

९७ **ॲटम्-थियरी**की अपूर्व समीक्षा की तथा खंडनभी किया.
९८ **डार्विनके** उत्क्रांतिवादका खंडन किया..
९९ **स्पेन्सरके** संशयवादका खंडन किया.
१०० **ॲनी बेझंटके** थियॉसफी का खंडन किया.
१०१ **मायर्सकी** समीक्षा की.
१०२ **नास्तिकवादका** समूल खंडन.
१०३ **जडवादका** खंडन करके **सर्वचेतनवादको** सिद्ध किया.

नीतिशास्त्र

१०४ परकीय और भारतीय नीतीका मूल्यमापन किया..
१०५ बेकन / ॲनी बेझंट / प्लेटो इ.का भी खंडन किया.

कीर्तन

१०६ कीर्तनमें पूर्वरंग-उत्तररंग कैसे रहे, इसका मार्गदर्शनकिया.
१०७ अभंगकें ७ तथा पदोंके १८ आख्यानोंकी निर्मिती की.
१०८ संस्कृतमें कीर्तन किया.
१०९ लोकगीतकारः तुंबडी,सयनाजी,स्त्रीगीतों की रचना की.
११० लावणीकार : ७७ लावणी-रचना की.
१११ नाटककार थे
११२ आत्मचरित्र लिखा.
११३ लोक-शिक्षक थे.
११४ स्त्री-शिक्षक थे.
११५ बाल-शिक्षक थे.

व्यक्ति-विशेष

११६ संस्कृत-मराठी-वऱ्हाडी-हिंदी-व्रजभाषा में लेखन किया
११७ चार वर्ष की आयु से कृष्णसाक्षात्कार था.
११८ बारहवे वर्ष की आयु से समाधिसुखका अनुभव था.
११९ व्यावहारिक नाम - **गुलाबरावमहाराज.**

१२० नाथसंप्रदायका नाम - **पाण्डुरंगनाथ.**
१२१ अभंग-मुद्रांकित नाम - **ज्ञानेश्वरकन्या.**
१२२ रासमें सम्मीलित - **पंचलतिका गोपी.**

इतर संबोधन

१२३ मधुराद्वैताचार्य
१२४ समन्वय महर्षी
१२५ दिव्यचक्षू
१२६ प्रज्ञाचक्षू

महाराजकी मानसिकता

१२७ **शरीरसे पुरुष** किंतु **भक्तित्तमे** : **स्त्री-सुलभ माधुर्य**
१२८ ज्ञानेश्वरकन्या-कृष्णपत्नी-गोपीभावसे : **अति कोमल**
१२९ शास्त्रचर्चा के खंडन-मंडन के समय : **तर्क-कर्कष.**
१३० बुजुर्गो को मार्गदर्शन करते समय : **पुत्रवत् नम्र.**
१३१ गलत आचरण करनेवालों के लिए : **कठोर.**
१३२ आर्य-विचारोंको निकृष्ट ठरानेवालोंको : **स्पष्टोक्त.**
१३३ इस प्रकार कोमल-नम्र-कठोर-तर्ककर्कष और सडेतोड याने स्पष्टोक्त ऐसी सर्व मानसिकता की योजना, **भारत स्वयं को जानकर,सत्वसंपन्न तथा समर्थ हो, इसीके लिए की.**
१३४ अपने अल्प आयुमें, स्वप्रकृतीकी चिंता छोडकर अपार कष्ट सहन किए.
१३५ स्वयं सर्वज्ञ होकर भी लोगोंको प्रमाणपूर्वक समझाने के लिए- **स्वयं सिरपर पुस्तकोंकी पेटी उठाकर गावोगांव यात्रा करनेवाले विश्वमें एकमेव संत है.**

पत्नीप्रेम

१३६ वैराग्यसंपन्न,ब्रह्मज्ञानसंपन्न,योगसंपन्न संत होकर भी पत्नी मनकर्णिकासे **अपार प्रेम किया.**
१३७ उनको विवाहके समयहि **परमार्थकी शपथ दिलाई.**
१३८ लिखना-पढना तो सिखायाही किंतु भागवतभी सहज आकलन होगा इतनी **संस्कृतकी तैयारी** करवा दी.
१३९ स्वयंके भक्तिरस में डुबे हुए गायनमें सरलतासे एकरूप होनेकी **स्वरसाधनाभी** बहाल की.
१४० लौकिक पुत्रमोहको विलक्षण रीतीसे छुडवाकर अलौकिक **वैराग्यपूर्ण भक्तिप्रेम** उनको प्रदान किया.

१४१ सौ. मणिकर्णिका का ब्रह्मस्थानमें प्रस्थान होनेपर महाराजके अंतरमेंसे **''विरहगीत''** सहज उमड पडा.

१४२ इस **'पत्नीप्रेमपराग'**मे 'विषयभाव'के स्थानपर परतत्व-स्पर्श से भीगी हुयी भक्ति की **अमृत-वर्षा** है.
यही **'वियोगोपलालन'** है !
वैराग्यसंपन्न संतमालिका में कहीभी न दिखाई देने वाला **यह विरह-विलाप जागतिक साहित्यमें एकमेव है** !

विविध साहित्य प्रकार

१४३	अभंग रचना	-	२१२३
१४४	पद रचना (राग-ताल-चाल सहित)	-	२२४४
१४५	**(संस्कृत**	-	**४१**
	पद / हिंदी	-	३०४**पद**)
१४६	श्लोक	-	१०००
१४७	ओवीसंख्या	-	२३०००
१४८	गद्यपद्यमिश्र पत्र	-	११८
	संस्कृत पत्र	-	**११**
१४९	ग्रंथसंख्या	-	१४०
	संस्कृत	-	**३२**
	हिंदी	-	**२**
१५०	पृष्ठसंख्या	-	७०००

.....

समन्वयमहर्षि प्रज्ञाचक्षु

संत श्रीगुलाबरावमहाराज

(इ.स. १८८१ से १९१५)

परिचय

विदर्भभूमि में स्थित अमरावती नगर से १३ मील दक्षिण की ओर लोणीटाकळी नामक एक गाँव है. यह श्रीगुलाबराव महाराज का नौनिहाल है. यहाँ माधान के मोहोड कुल में सौभाग्यवती अलोकाबाई ने शक १८०३ के आषाढ शुद्ध दशमी (६ जुलै १८८१) के दिन महाराज को जन्म दिया. उनके पिताश्री का नाम गोंदुजी मोहोड था. वे माधान के पाटील थे. मोहोडों का कुल मूलतः मोढ वंश के क्षत्रियों का था. किन्तु अनेक पीढियों में संस्कार लुप्त होने के कारण महाराज स्वयं को कुनबीहि मानते थे.

महाराज के पाँच वर्ष के होने पर मातोश्री अलोकाबाई उन्हें लेकर माधान अपने ससुराल वापस आईं. उस समय उनकी आबदार विशाल आँखे, सीधी नाक, साँवला रंग, पुष्ट और मोहक हाथ-पैर यूँ लुभावनी बालमूर्ति थी. उम्र के आठवें-नौवें महीने में आँखों की बिमारी हुई और किसी ने भूलकर गलत दवाई उनकी आँखों में डाल दी और हमेशा के लिए उनके चर्मचक्षु आहत हुए. बाहरी दृष्टि लुप्त हो गई किंतु उस बाल-महात्मा को भगवान् की असीम कृपा से चिन्मय दृष्टि प्राप्त थी. अतः उनका मन सदैव प्रसन्न ही रहता था. जब बोलना सीख गए थे तो गर्दन हिलाने और हाथों से ताली बजाने में ही इस बालमूर्ति को आनंद आने लगा. धीरे-धीरे यह अबोधता बढती ही गई. दौडना, चुटकियाँ बजाते हुए गोल-गोल घूमना और जोर से चिल्लाने में इन्हें आनंद आने लगा.[१]

बचपन

इनकी चार वर्ष की आयु में अलोकाबाई को एक पुत्री हुई परंतु वह बच न सकी. माँ को प्रसूतिरोग ने जकड लिया और शक

१८०७ में उनका देहावसान हुआ. महाराज मातृसुख से विमुख हो गए. महाराज की नानी (सावित्री देवी) उन्हे लोणी ले गई और नौनिहाल मे बडे प्यार से उनका पालन-पोषण किया. महाराज को भी नानी से बडा प्रेम था. वे उन्हें 'बाई' कहते थे. उससे ही वे लाई की माँग करते. अपनी भूख-प्यास वे उससे ही कहते थे. उसके पास ही जाकर सारी जिद और प्यार, हक से पूरा करवाते थे. बचपन में महाराज की अलौकिकता का अनुभव लोगों को होने लगा था. आसपास की स्त्रियाँ कुएँ पर पानी भरते समय इस प्रज्ञाचक्षु बालक की करतूत देखने के लिए निकट आ खडी होती थीं. तब महाराज उनके नाम तेजी से बतलाते थे.

वे पूछतीं -'हमारे नाम तुम्हें केसे मालूम होते हैं, रे?'

तो महाराज कहते -'आपकी चुडियों की खनखनाहट से.'

उस पर वे फिर पूछतीं - 'अरे, चुडियाँ तो सबकी एक समान है, उनसे तुम्हें हर किसी का अलग-अलग नाम कैसे समझ आता है?''

महाराज कहते- 'हर किसी की चुडियों की आवाज अलगअलग है.'

रोज भोजन के लिये बैठने से पूर्व चंदन का लेप उँगली से यहाँवहाँ छिडकते थे. खाना खाते समय बीच में ही दोनों हाथ सामने धर देते थे.

''ऐसा क्यों करते हो!'' पूछने पर कहते थे -

''बाई, एक सुंदर नन्हासा बालक आया था, उसके चार हाथ, सिर पर मुकुट, ललाट पर केसरिया चंदन, और कानों में कुंडल थे.''

उसी तरह बचपन से ही उनहें एक शौक था. दोनों हाथों से चुटकियाँ बजाते और अपने ही चारों ओर काफी देर तक गोलमोल घूमते रहते थे पर उनका सिर कभी चकराता न था.[२]

शिक्षा

आठवे साल इ.स. १८९० में महाराज के पिता उन्हें माधान वापस ले आए. घर मे सौतेली माँ आई थी. वह महाराज को बहुत परेशान करती थी. अंधे होने के कारण पाठशाला जाने का प्रश्न ही न था. पहाडे, जबानी हिसाब आदि गाँव के पंतोजी ने सिखाए. उनके बडे चाचा 'पाटीलबोवा' उन्हें कभी-कभी पाठशाला भेजते थे. बस इतना ही था पाठशाला का संस्कार. उन्हें शास्त्र पुराणों का बडा आकर्षण था.

गाँव के उपाध्याय लक्ष्मण भट जोशी के पास जाकर श्लोक, शिवलीलामृत का ग्याहरवाँ अध्याय, व्यंकटेशस्तोत्र आदि महाराज ने सीख लिए थे. एक बार सुनी हुई बात को वे भूलते नहीं थे. उनकी स्मरणशक्ति एकपाठी थी. नुक्का पर मुसलमान आने पर उससे वे कुरान का कलमा पढवाते थे और फिर सही-सही सुना देते थे.

विवाह

हमेशा की तरह से एक बार वे सीताराम जी भुयार के पडोस में खेलने के लिए गए थे. वहाँ सीताराम जी की माँ अपनी पोती को लेकर आई थी. उन्होंने मजाक में कह दिया ''एक मुक्के में इस नारियल को तोडोगे तो यह लडकी तुम्हारी होगी.''

महाराज ने एक ही मुक्के में नारियल को तोडा और कहने लगे -'अब तो पीछे पडकर लडकी हासिल करूँगा.'' आगे चलकर इसी लडकीसे ब्याह तय हुआ. यही थी महाराज की पत्नी सौ. मणिकर्णिका. इस समय महाराज की उम्र बारह वर्ष की थी.[३]

विद्या व्यासंग

महाराज को शास्त्र पुराणों का आकर्षण था. उम्र के साथ उनका ग्रंथावलोकन भी बढता गया. लक्ष्मणभट जोशी, पांडुरंगपंत, केशवराव पांडे आदि साक्षर व्यक्तियों से नम्रतापूर्वक, जितने ग्रंथ मिलते थे वे पढवा लेते थे. इसके लिए उन्हें काल, श्रम, धन किसी की भी परवाह नहीं थी. पढने के बदले में कभी ज्वार, कभी गेहूँ गुरुदक्षिणाके रूप में देते थे. एक बार तो उन्होंने हाथ का चाँदी का कडा निकालकर दे दिया, तो दूसरी बार केशवराव काका को, अपने ब्याह के समय प्राप्त, शालमुदी की शाल दे डाली थी. इस ग्रंथावलोकन में पुराण-स्मृतियाँ-वेदवेदांत से लेकर संगीत, आयुर्वेद, साहित्यशास्त्र, थियॉसॉफी, पाश्चात्य तत्त्वज्ञान और आधुनिक विज्ञान के इलेक्ट्रान थियरी तक उनकी बुद्धि सहज गमन कर पाती थी, यह बडा ही आश्चर्य था.

योगसाधना

बचपन से ही महाराज योगसाधना करते थे. रात को सब सो जाते थे फिर वे कपडे से फटकारसी ध्वनि निकालते. कोई जाग नहीं रहा है यह विश्वास पाकर सिर पर चादर ओढ लेते थे और ध्यानस्थ बैठ जाते थे. एक बार यूँ ही बैठे थे. रात के बारह बजे के समय

भिकाभाऊ जग पडे. उन्होंने महाराज को देखा और पुकारने लगे. समाधिस्थ होने के कारण महाराज कुछ नहीं बोले. उन्होंने हाथ से टटोलकर देखा तो साँस भी बंद थी. भिकाभाऊ ने डरकर पाटीलबोवा को बुलाया. चारों ओर गडबडी छा गई. फिर प्रातः ४ बजे महाराज समाधि से जाग पडे और साँस चलने लगी, तब सबकी जान में जान आई. ऐसे प्रंसग तो बारबार आते थे.

सोलहवें वर्ष महाराज का माताभाव से पालन-पोषण करने वाली सारजाताई और महाराज के पिता संक्रामक बीमारी में चल बसे (इ.स. १८९७). फिर महाराज के परिवार की हालत बिगडने ही लगी. एक बार महाराज को विष प्रयोग का संदेह हुआ और उन्होंने अपने घर मे भोजन करना छोड दिया. रामचंद्र बापू आदि किसी के भी घर खाना खाते थे. इसी समय 'देऊरवाडा' के एकांत स्थल में कृष्ण जन्म का उत्सव मनाना आदि आनंददायी प्रसंगों की भरमार रहती थी. उसी समय उन्होंने रामचंद्र बापू मोहोड, विश्रामभाऊ, रंगूबाई आदि आठ-दस व्यक्तियों को पहली बार मंत्रदीक्षा दी. उस समय इनकी दिनचर्या इस प्रकार थी.

दिनचर्या

प्रातः ठण्डे पानी से नहाकर गीता, सप्तशती, तुलसीमाहात्म्य आदि सुरीली आवाज में गाते थे. फिर मानस पूजा होती थी. मानस पूजा के समय अबीर की सुंदर महक फैलती थी. भोजन के पूर्व तीर्थ प्राशन करते. भोजन के बाद कभी-कभी घंटों तक साष्टांग नमस्कार करते थे. गर्दन और हाथ हिलाते समय वे बडे ही एकाग्र हो जाते थे. कभी निकट के खंभे को, तो कभी दीवार को, तो कभी उनकी अपनी पीठ पर ही उनके हाथ जोर से टकराते थे, पर उन्हें तो उसकी सुध ही नहीं होती थी. कभी-कभी घर के पास के नीम के वृक्ष के बडे मूल पर धोती डालकर उसे ही ईश्वर मानकर रातभर उसके पैर दबाते थे. उस समय मुँह से कुछ मंत्रोच्चार भी करते थे. कभी जंगल में जाते, अपनी धोती की मोटी किनार फाडकर वृक्ष पर बाँधते थे और उस पर झूला झूलते थे. कभी-कभी घमटे में ही समाधि लगाते थे. उस समय उनकी देह से पसीता बहता था और साँस भी बंद रहता था. कभी दोनों हाथों से चुटकियाँ बजाकर अपने ही चारों ओर गोल-गोल घूमने

का उनका खेल भी बडा विलक्षण था. प्रहरों तक घूमते रहते थे. कभी-कभी कुत्ते की आवाज निकालते थे जिससे गाँव के सारे कुत्ते एक साथ भौंकने लग जाते थे. इस समय उनका पोशाक था- चौबंदी टोपी और मोटी धोती.

पुस्तक प्रेम

महाराज को पुस्तकों से बडा लगाव था. कोई भी प्राचीन ग्रंथ छपकर आया हो, या पाश्चात्य तत्त्वज्ञान का नया ग्रंथ हो, उसकी खबर मिलते ही महाराज उसे बुलवा लेते थे. किन्तु आर्थिक अभाव के कारण किसी से भी माँगकर पुस्तक का मूल्य चुकाते थे.

पाश्चात्य मतों का खंडन करते समय, या आर्यसिद्धान्त के बारे में जानकारी देते समय - उन्हें संदर्भ ग्रंथों की आवश्यकता पडती थी. अतः किताबों की लोहेकी पेटी सिर पर उठाएँ अकेले ही निडर घूमते थे. कभी-कभी चांदूरबाजार, जैसे शहरों की ओर चल पडते थे. दिन हो या रात, उन्हें घूमने के लिए किसी की सहायता की आवश्यकता नही थी.

महाराज के चाचा पाटीलबोवा उनके इस विचित्र व्यवहार से कभी-कभी संतप्त हो उठते थे. एक बार उन्होंने क्रोध में आकर कहा-

''मुझे जिंदगी नहीं चाहिए. मैं अभी घर-बार खेत ब्राह्मणों को दान कर देता हूँ.''

उसी समय महाराज उठ कर खडे हुऐ और बोले ''अभी मैं ब्राह्मणों को बुलाकर लाता हूँ.''

यह देखकर पाटीलबोवा संतप्त होकर घर से बाहर चल दिए. ऐसा बार-बार होने लगा था. अंत में इ.स. १९०० के लगभग घर की त्रासदियों ने चरम रूप धारण कर लिया था और महाराज ने घर छोड दिया और रामचंद्रबापू मोहोडजी के यहाँ रहने लगे. १९०१ के आसपास उन्हें ज्ञानेश्वरमहाराज का साक्षात् अनुग्रह हुआ.

माझा सद्गुरु करुणाघन । आळंदीपती कल्याण निधान ।
जेणे आपुलिया नामाचा मंत्र देऊन। कृतार्थ केले मजलागी।
अंकी घेऊनिया खुणा । सांगितल्या स्वनामाच्या ।।

इन शब्दों में महाराज उस प्रसंग का वर्णन करते हैं. ऐसे परमार्थ-प्राप्ति के परमोच्च क्षणों में उनकी व्यावहारिक दशा बडी ही

कष्टप्रद थी. पाटीलबोवा कभी-कभार पायली-दो पायली ज्वार देते थे. सौ. मनकर्णिकाजी यहाँ-वहाँ से तेल-नमक माँगकर भोजन बनाती थी. बालों में तेल नहीं, अच्छी साडी-धोती नहीं; ऐसी अभाव की स्थिति थी. किन्तु ऐसी अवस्था में भी उन्होंने अपनी पतिसेवा में कोई बाधा न आने दी और न ही परिस्थिति के विरोध में कभी कुछ कहा.

कुछ दिनों बाद महाराज पत्नी के साथ सिरसगाँव मे राजाराम देशमुख के घर रहने के लिए गए. वहाँ महाराज की बाल लीलाएँ, विद्याव्यासंग, भगवच्चर्चा, अमृतानुभव-ज्ञानेश्वरी का निरूपण, कीर्तन भजन आदि दिन-रात चलते ही रहते थे. उनका सरल स्वच्छंद स्वभाव, किकलियाँ जैसे खेल, स्वरचित नए अभंग और मधुर स्वर में पदों का गायन इन सबको लेकर लोगों के मन में कुतूहल जागता रहा था. और उनके साहचर्य का काल अप्रतिम आनंद में कैसे व्यतीत हो जाता था, इसका उन्हें भान ही नहीं रह जाता था.

गाँव से शहर की ओर

सिरसगाँव से महाराज कभी-कभार अमरावती हो आते थे. वहाँ मुळे मास्टर, हरिभाऊ केवले आदि का इनसे संपर्क बढने लगा और वे महाराज की और आकर्षित हुए. उस समय महाराज तुलनात्मक दृष्टि से वैदिक सिद्धांतों को लोकों के सामने लाने के कार्य में जुट गए थे. इसके लिए आवश्यक चर्चा, पत्र और लेख लिखने का कार्य तेजी से प्रारंभ हो गया था. डार्विन के उत्क्रान्तिवाद का और स्पेन्सर के अज्ञेयवाद का खंडन ग्वालियर के जठारजी को लिखे पत्र मे इसी काल मे किया था. उसी समय महाराष्ट्र के ज्योतिबा फुले के सत्यशोधक समाज की एक शाखा करसगाँव में खुली थी और वहाँ महाराज को लाने का यत्न हो रहा था. इस बारे में अपनी आत्मकथा में महाराज लिखते हैं -

''सत्यशोधक कहते हैं कि ''हम सही मायने में ब्राह्मणों के विरुद्ध नहीं हैं किन्तु जो मूर्ख हैं और अपना सुधार नहीं चाहते, उन्हें अपनी वेदविद्या सीखनी चाहिए और इस ओर हम प्रयत्नशील हैं'' उन्होंने ऐसा कहा था किन्तु सिरसगाँव की सभा में सत्यशोधकोंने कुल मिलाकर तो ब्राह्मणों को अपशब्द कहे. तब उस सभा में मैं ही अकेला उठ खडा हुआ और उनके विचारों को काटता हुआ 'प्रथम जैसा तय

किया था वैसे आपके उद्देश्य नहीं दिखाई देते - ऐसा कहकर उनसे प्रश्न पूछने लगा. किन्तु उन प्रश्नों के उत्तर वे नहीं दे पाए.

इसके विपरीत - 'उसे तो सिखाकर भेजा है उसकी बात सुनकर हमारा क्या भला होगा!'

यूँ वे दोनों ही कहने लगे. तब सभी लोगोंने तालियाँ पीटी. इस स्थिति में बडे शहर में जाकर अपने वाणी का प्रभाव लोगों के मन पर डाले बिना इन लोगों के विचारों में सही बदल नहीं हो पाएगा और ऐसा न करने पर मेरा नाम सत्यशोधकों में ही गिना जाता रहेगा ऐसा डर मुझे लगा.''

इस तरह माधान जैसे छोटे गाँव को छोडकर अमरावती आने का कारण अपने आत्मनिवदेन में उन्होंने व्यक्त किया है. भारतीय समाज के परस्पर जातिद्वेष के बारे में पक्षपात विरहित तुलनात्मक मूल्यमापन भरे पत्र लिखना उन्होंने प्रारंभ कर दिया.

उसी तरह युरोपीय मतों को समझने के लिए डार्विन, स्पेन्सर, विलियम हॅमिल्टन आदि की पुस्तकों और भौतिक विज्ञान की किसी भी भाषा की पुस्तकों को पढवा लेने के लिए महाराज दूसरों से बिनती करते थे. किताबों का भार सिर पर लादकर नंगे पैर दिन-रात, धूप-बरसात-ठंड किसी की भी परवाह किए बिना घूमते थे और अनेक कष्ट झेलते रहे.

कात्यायनी देवी का व्रत

उम्र की बाइसवें वर्ष इ. स. १९०३ में उन्होंने माधान में भागवत के दशम स्कंध में वर्णित कात्यायनी देवी के मंत्र की दीक्षा ली, और वहीं व्रत किया. बाद में इ.स.१९०४ में शुक्लेश्वर वाठोडा में नदी के तट पर रेत का शिवलिंग बनाकर प्रतिदिन पूजा करने का, ३३ दिनों का, कात्यायनी व्रत सामुहिक रिती से प्रारंभ किया. महाराज स्वयं को 'ज्ञानेश्वर कन्या' कहते थे और 'कृष्णपत्नीत्व का अधिकार' पाने के संकल्प से उन्होंने यह व्रत किया. स्वयं को प्राप्त गोपियों की माधुर्य रूपी पराभक्ति अपने अनुचरों को भी मिले इसलिए प्रयत्नशील थे. वे कहते है,

'अरि सखियाँ, हम सभी गोपियाँ हैं ऐसी भावना करो. भागवत में कहे अनुसार गोपियों ने कात्यायनी व्रत करके श्रीकृष्ण से रासक्रीडा

का अधिकार प्राप्त किया था. वैसे ही हम भी प्राप्त करेंगे.' इस मधुर भाव से इस व्रत का आरंभ उन्होंने किया. वे भक्तिपदतीर्थामृत मे कहते हैं

शिवो भूत्वा शिवं यजेदिती । ही सवे नेऊ श्रुती ।
मग तीसचि प्रार्थोनि भक्ती । मागोनि घेऊ ॥३१॥
प्रेमाचा करू कळस । हरीस अर्पू ब्रह्मरस ।
श्रीकृष्णपदी सावकाश । सख्यांनो भृंगी होऊ चला ॥३२॥
सनकादिकांची ध्येयमूर्ती । नारदप्रभूंची गेय कीर्ती ।
रासमंडळी प्रेममूर्ती । चला पाहू सख्यांनो ॥३४॥ अ. २

इस तरह से सब को माधुर्य भक्ति के आनंद की झलक दिखलाता कात्यायनी महोत्सव प्रांरभ हुआ. इस व्रत में चाहे वह भजन का प्रसंग हो या श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव हो, उसकी शोभा अपूर्व रहती थी. संत साहित्य के तत्कालीन अभ्यासक ह. भ. प. लक्ष्मण रामचंद्र पांगारकरजी आँखों देखा वर्णन करते हैं -

भजनोत्सव

कोई एक तुकारामजीका का अभंग या ज्ञानेश्वरी की ओवी गाता था। उसके अनुसंधान में महाराज तत्काल स्वरचित भजन गाते थे. एक चरण महाराज कहते थे, उनके बाद वही चरण श्रोतागण कहते थे. उसका अगला चरण महाराज तुरंत ही रचते थे. इस क्रम से भजन गाते-गाते श्रोतृवृंद का अंतःकरण करुणा से भर जाता था. भजन यदि प्रेमरस में होता तो श्रोतृवर्ग की आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगते थे. भक्ति रस के डूबे चरणों के समय अंतःकरण भक्ति भाव में विभोर हो जाता था. कुल मिलाकर यह था कि जिस रस में भजन होता था वह रस मूर्तिमान साकार हो उठता था और लोक भी उसी मे तन्मय हो जाते थे. यूँ लगता कि प्रवचन करते समय श्रुति-स्मृति-पुराण और संतवचन मानो उनके बुलावे की ही प्रतीक्षा मे रहते थे. महाराज की प्रवाही वाणी में ओवीरचना और प्रेमपूर्ण अभंगों को सुनकर, श्रीज्ञानदेव-एकनाथजी आदि संतों का काव्यविस्तार इतना विशाल कैसे बना होगा उसका वास्तविक चित्र हमारी नजरों के समक्ष आ खडा होता है. उनकी प्रवाही वाणी की गति इनती तेज थी कि चार-चार व्यक्ति लिखने के लिए बैठते थे परंतु लिख नहीं पाते थे. उसी कारण उनके उतने ही ग्रंथ

उपलब्ध हैं जो उन्होंने धीरे-धीरे कहकर लिखवाए हैं. शीघ्र लेखक थे हरिभाऊ केवले, नारायणजी पंडित, भक्त आदि.

परमार्थ की शिक्षा

महाराज को अपने अनुयायियों की बडी चिंता रहती थी. उनकी परमार्थ में उन्नति हो उसके प्रति वे सजग थे. उनकी पत्नी सौ. मनकर्णिका को लिखा पत्र और भागीरथी ताई खोलकुटे को लिखे ग्यारह पत्र और कुल मिलाकर ११८ पत्र इसके गवाह के रूप में काफी हैं.

उनकी पत्नी सौ. मनकर्णिका पतिपरायणा तों थी ही, पर शिष्या भी थी. महाराज को एक अकेला पुत्र था. वह जब चार मास का था तब मां के मन में उस नवजात शिशु के प्रति आत्यंतिक लगाव स्वाभाविक ही था. किन्तु वृत्तिनिरीक्षणकुशल महाराज ने देख लिया कि मनकर्णिका के परमार्थ पर इसका परिणाम विपरीत होगा. और उन्होंने वाठोडा के कात्यायनी व्रत के अवसर पर (दिसंबर १९०५) एक बनावटी व्यूह रचा. वे रात को जाग पडे और मनकर्णिका से उनके पुत्र को उसके ही हाथों विष पिलाने को कहा. उन आकस्मिक क्षणों में माँ ने पुत्र मोह पर संयम धरकर मन का कठोर निग्रह किया और विष पिलाने के लिए सिद्ध हुई. बाद में सही स्थिति जानकर वह बडी क्षुब्ध हुईं और उनके मुख से शब्द निकल पडे -

''अरे दुष्ट, सद्गुरु की सेवा में बाधा लाने के लिए तूने मेरी कोख से जन्म ही क्यों लिया!''

ऐसे ही कुछ लोकविलक्षण तरीकों से प्रबुद्ध करते हुए अपने शिष्यगणों की परमार्थ में उन्नति साधने का प्रयत्न महाराज करते थे. उस समय आसपास के लोगों को महाराज बडे ही क्रूर और विसंगत लगते थे. किन्तु - ''विकारोऽपि तेषां श्लाघ्यो भुवन भय भंग व्यसनिनः ॥''

इस शास्त्रवचन को मानो साकार करने के लिए ही ऐसे प्रसंग बार-बार घटित होते थे. महाराज पारमार्थिक शिक्षा के लिए अति कठोर जान पडते थे फिर भी शिष्यगणों पर उनका बडा स्नेह था. उनके अंतःकरण की आत्मीयता का अनुभव सबको आता ही रहता था.

पत्नी का चिरविरह

इ. स. १९०७ में सौ. मनकर्णिका परलोक सिधार गई और महाराज को २४ वर्षों की युवावस्था में ही पत्नी का वियोग सहना पडा. उस समय महाराज द्वारा लिखित 'पत्नीप्रेमपराग' नामक भावकाव्य मन को करुण रस मे डुबो देता है .उसमें अंत में महाराज लिखते हैं -

विलासललिते हृद्वनिं स-कंटकही परि गुलाबफुल पाळी ।
सौरभ मिळेल तुजचि, जीवन सुकवूनि, न पाकळ्या गाळी ॥

इस नियति केआघात के बाद महाराज ने खान-पान के प्रति ध्यान नहि दिया. अतः उनका स्वास्थ्य गिरते ही गया. वह पहले जैसे सुदृढ कभी न हो पाए. अपने पत्नी को भी ब्रह्मवादिनी के सर्वोच्च पारमार्थिक अधिकारतक ले जानेवाले संत का यह विलक्षण उदाहरण है.

उन्होंने १९०८ में स्वयं हि गुरुस्वरूप भगवान् शिव की प्रतिदिन की पार्थिवपूजा प्रारंभ की तथा अन्यों को भी हमेशा के लिए पार्थिवपूजा का आजीवन नियम बना दिया. इसके बाद महाराजजी का अधिकांश समय भजन-पूजन, प्रवचन, ग्रंथलेखन और भक्तिरस से पूर्ण पदों की रचना करने में ही व्यतीत होता था.

अपने लेखन में उन्होंने शंकराचार्यजी के अद्वैततत्त्वज्ञान के बल पर ही सगुणभक्ति किस प्रकार अवस्थित है यह स्पष्ट किया. और उसी संदर्भ में भक्ति का आलंबन जो सगुणसाकार अवतारविग्रह है, उस के 'अनध्यस्तविवर्त' स्वरूप का नया भक्तिसिद्धान्त प्रस्थापित किया. और भक्ति को शास्त्रीय नींव दिला दी.

नारद, कपिल, व्यास आदि महर्षियों के समान सूत्र रचना भी की. शंकराचार्य रामानुजाचार्यों के समान नारदीय भक्तिसूत्रों पर, योगवासिष्ठ गीता आदि अनेक ग्रंथोंपर खंडनमंडन के रूप मे सविस्तर भाष्य भी लिखे.

संप्रदायसुरतरु नामक आकरग्रंथ लिखा.

संगीत, आयुर्वेद, व्याकरण, साहित्यशास्त्र आदि अनेक विषयों पर नया मौलिक योगदान दिया.

सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, पूर्वमीमांसा-उत्तरमीमांसा, आदि

वैदिक षड्दर्शनों के भीतर भासमान अंतर उन्होंने नष्ट किया और उनमें परस्पर समन्वय का सूत्र प्रतिपादन किया. और सारे दर्शनों पर ग्रंथरचनाएं भी की.

परमार्थ कें नामपर होनेवाली भोंदूगिरी का भण्डाफोड और चमत्कारों का निषेध भी किया.

धर्म के अंतरंग में उथल-पुथल मचाने वाले धर्मसुधारकों की तीखी खबर ली.

आर्यों के निवासस्थान के बारे में लोकमान्य तिलक आदि विद्वानों के पश्चिमी मतों के समर्थक विचारों का सप्रमाण युक्तियों से खंडन किया. और ऐसी गलतफहमियों से एकात्म भारतीय समाज में उभरते हुए परस्पर द्वेषरूपी विषवृक्ष के बीज का नाश किस तरह से किया जा सकता है, उस के लिए तर्कपूर्ण और मौलिक विचार रखे.

भौतिकशास्त्र में भी प्राचीन आर्य कितना कुछ जानते थे, इसे उन्होंने प्राचीन ग्रंथों के संदर्भ देकर और इतिहास का प्रमाण देकर स्पष्ट किया और प्राचीन आर्यशास्त्रों के बल पर नई वैज्ञानिक खोज किस प्रकार संभव है उसका भी मार्गदर्शन किया.

पाश्चात्य तत्त्वज्ञों के मतों से भारतीय तत्त्वज्ञों के मतों की तुलना की और तर्क की कसौटी पर परीक्षण किया. डार्विन- स्पेन्सर के मतवादों की अपरिपक्वता स्पष्ट की. तथा अणु-विज्ञान के संबंध मे भी खंडन-मंडन करते हुए आर्य सिद्धान्तों का श्रेष्ठत्व सिद्ध किया.

इस तरह के कई शास्त्रीय विषय ताकत के साथ महाराज ने हल किए. उनके साहित्य में प्राचीन और आधुनिक विषयों की इतनी भरमार है कि मराठी के **साहित्यसम्राट नरसिंह चिंतामणि केलकरजी कहते है - ''महाराज की कृतियाँ एक विशाल एनसायक्लोपीडिया याने ज्ञानकोशहि हैं.''**

बहोत सारे सांस्कृतिक और आधुनिक विषयों पर उनका मार्मिक विश्लेषण सामान्य लोगों के शंकाओं को सहज दूर करनेवाला, तथा विद्वानों को आश्चर्य में डुबो देनेवाला है. **पंतप्रधान अटलबिहारी वाजपेयीजी कहते है -**

''घागर में सागर भरा है.''

यह सारा साहित्यनिर्माण का वाग्यज्ञ अपनी युवावस्था के ३४

वें वर्ष की आयु में ही उन्हों ने पूरा किया. और अन्त में इ.स. १९१५ में, पुणेनगर में भाद्रपद शुक्ल वामनद्वादशी, २० सितम्बर के दिन सूर्योदय के समय पर महाराज ने ब्रह्मस्थान के लिए महाप्रस्थान किया.

कुल मिलाकर महाराज के कार्य का सर्वांगिण अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि उन्हों ने - प्राचीन भारतीय साहित्य में विलुप्त विविध विचारसंपत्ति को खोज निकालने की दिशा दिखलाई. भारतीयों के विविध ज्ञानशाखाओं में नजर आने वाली विविधता में एकवाक्यता बतलाई. समन्वय पर अधिक बल देकर भारतीयों की अंतर्गत फूट को नष्ट करने की शक्ति रखने वाली विविध शास्त्रों पर निर्मित मौलिक साहित्य कृतियाँ ही महाराज के करकमलों से संपन्न शारदोपासना है.

समन्वय के सूत्र से अनुस्यूत, भारतीय साहित्य में महाराज के साहित्यिक व्यक्तित्व ने अपना एक विशेष स्थान निर्माण कर लिया है.

अनादि काल से वैश्विक व्यवस्था में प्रमुख रहे हुए भारत की आध्यात्मिक भूमिका को, तथा ज्ञानदान की परंपरा को, पुनःश्च दृढ बनाने में महाराज के कार्य का बहुमोल सहयोग है, यह विचार बार-बार मन में आता है.

महाराज की आत्माभिव्यक्ति

श्रीगुलाबराव महाराज ने अपना अधिकार, संत ज्ञानेश्वरजी से साक्षात् अनुग्रह, ग्रंथ निर्माण का कारण और अपने जीवन का उद्देश्य आदि को लेकर अपने दोषों तक सभी निजी विषयों पर लिखते हुए, उनकी भूमिका के बारे में कई प्रसंगों में स्पष्टीकरण किया है. संप्रदासुरतरू, सुखवरसुधा, प्रियलीलामहोत्सव, नित्यतीर्थ, साधुबोध, अभंग, पदरचना, पत्राचार, निबंध आदि अनेक जगह विविधांगी संदर्भों में महाराज ने स्वयं हि अपने व्यक्तित्व को पारदर्शी किया है. पंद्रहवें यष्टि में आत्मकथनात्मक एक छोटा-सा प्रकरण भी लिखित रूप मे है. इसकी विशेषता यह है कि अनेक प्रसंगो में विषय को समझाने के लिए उन्हों नें अपने ही अवगुणों का उदाहरण स्वरूप वर्णन किया है. उसमें भी एक मनोरंजक बात तो यह है कि महाराज उनकी सदैव की युक्तिपूर्ण वादपद्धति से अपने ही तथाकथित अवगुणों को साबित करने हेतु जुट जाते हैं. केवल अपने बारे में दूसरों को जानकारी मिले या आत्मसंमान बढे इस दृष्टी से लिखा हुआ यह आत्मचरित्र नहीं हैं.

इसके विपरीत, अपने पास के लोगों की परमार्थ में प्रगति करने के लिए उन्होंने जो लोकविलक्षण शिक्षा-पद्धति अपनाई थी, उसका ही एक हिस्सा मानकर यह आत्मचरित्र लिखा हुआ है.

श्रीज्ञानेश्वरजी का साक्षात् अनुग्रह

व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो महाराज को न तो किसी ने पढाया था और नही वे किसी स्कूल में शिक्षित थे. वे लिखते हैं -

''मुझे ज्ञानेश्वरमां ने गोद में लिया, कृपादृष्टि मुझ पर डाली, मेरी योग्यता को भी नहीं जानना चाहा, मेरे प्रति उन्हें केवल करुणा का भाव जाग उठा, और अपने ही नाम का मंत्र उन्होंने मुझे दिया.'' (सन् १९०१) [४]

श्रीज्ञानेश्वरमहाराज के अनुग्रह से पहले महाराज को योग के 'ऊह-सिद्धि' का उत्साह न था. अतः लोगों से वे ग्रंथ पढने के लिए विनती करते थे. पर उपरोक्त अनुग्रह के बाद वे पूरे आत्मविश्वास से कहते हैं

''धर्म संबंधी विचारों के बारे में मेरे मन में कोई भ्रम नहीं है. बडें-बडें महंतों के दोष भी दिखाई देने लगते हैं. किसके समान? तो सत्यवतीसुत व्यास जी के समान!''[५]

महाराज के इस कथन की सत्यता का अनुभव अवश्य होता है जब कभी वे मधुसूदनसरस्वतीजी के अद्वैतसिद्धि का खंडन करते हैं, तो कभी शंकराचार्यजी के 'दो कपिलमुनीयों' के संबंध में 'वितंडा' सूचित करते हैं. इतना होकर भी वे उन्हें दोष नहीं देते वरन् उन विरोधी प्रतीत होती विसंगतियों में उचित समन्वय बतलाकर अभ्यासकों के समक्ष रखते हैं. इससे पता चलता है कि महाराज की बुद्धि कितनी तीक्ष्ण और विवेचक थी. उसी तरह अनेक महात्माओं के गुण- दोष दिखाकर भी उनके संबंध में महाराज के मन में आदर भाव में कोई कमी नहीं आती थी. यह देखकर बडा ही अचरज होता है.

अगाध माझी मती । येथे विवाद नही निश्चिती ।
परी स्वकर्मे चाक्षुष संपत्ती । प्रहरिली आहे ॥१३५॥ सं. सु. अ. १

इस तरह से अपनी बुद्धि के क्षमता की पहचान अपने ही लोगों को करा देते हैं. परंतु दुसरे ही क्षण कहते है ''मेरा पूर्वकर्म दूषित था अतः मैं अंधा हुआ, शूद्रजन्म मिला और गरीबी से ग्रस्त हूँ.'' इस

तरह दैववश प्राप्त दोषों का भी वे वर्णन करते हैं. इस तरह महाराज में प्रखर आत्मविश्वास और दीनता इन परस्पर विरोधी गुणों का मिलाजुला मोहक रूप दिखाई देता है.

ज्ञान संपन्नता

एक प्रसंग में - ''किसी भी आदमी ने मुझे सिखाया नहीं . मैं लोगों से पुस्तकें पढवाता था. मेरी अपार बुद्धि से पाठक भी जिस अर्थ को समझ नहीं पाते थे वे मेरे समक्ष सत्यवतीनंदन व्यासजी के समान सम्यक रूप से साकार हो उठते थे. कुछ पाठक सुज्ञ भी थे किन्तु उन्हें भी भ्रमरहित ज्ञान मैं ही देता रहा हूँ. आगे चलकर वे ही मेरे शिष्य कहलाने लगे, किन्तु उनके ऋण मुझसे कभी चुकते नहीं हो सकेंगे.''

ऐसा महाराज कृतज्ञता से भरकर कहते हैं और इसी कारण से सांप्रदायिक मंगलाचरण में -

वाचकं लेखकं वंदे गुरुं नारायणं हरिम् ।
दत्तात्रेयं व्यंकटेशं पुनर्लक्ष्मणमाभजेत् ॥

कहकर वाचक-पाठक वर्ग और शिष्यपंचायतन और को प्रणाम करते हैं और अपने अनुयायियों में भी यही रिवाज लागू करवाते हैं. इस तरह अपनी अपार बुद्धि की पहचान होकर भी महाराज अन्यों के प्रति कृतज्ञता की याद कभी भी कम नही होने देते.

अनेक भाषाओं का ज्ञान

महाराजजी ने किसी भाषा का विधिवत् अध्ययन नहीं किया था. प्राथमिक पाठशाला के संस्कार भी उन पर नहीं थे. किन्तु उनके बुद्धीका एकपाठी रूप और किसी भी भाषा में शास्त्रों के बारें में मर्मग्राही चिंतन देखकर लोग आश्चर्य में डूब जाते थे. योग में 'शब्दसंयम' की साधना पूर्ण होते ही मानव की ही नहीं वरन् पशु-पक्षियों की भाषा भी समझ आने लगती है. अतः किसी भी भाषा के प्रश्न का रहस्य पहचानकर महाराज उत्तर देते थे, ''अंग्रेजी ही क्या मुझे तो मराठी भी तोते की तरह बोलनी नहीं आती.'' यूँ वे कहते थे. इसके बावजूद ''कोई एक भाषा मुझे आती है या नहीं? उसे मुझे किसने सिखाया? या अपने आप सीख ली? इसके बारें में लोगों की जितनी विचित्र मान्यताएँ होंगी उतनी रहने दो. मुझे उनसे क्या लेना-देना.''- ऐसा उन्होंने कहा है. [९]

इसीलिए ऐसा जान पडता है कि शब्दसंयम के बारे में उपलब्ध योग का सूत्र ही महाराज के अनेक भाषाज्ञान का मूल कारण है, यही कहना उचित है.

योगशास्त्र पर ग्रंथलेखन

महाराज ने योग पर ८ ग्रंथ रचे है. उनमें नई-नई प्रक्रिया के बारे में मार्गदर्शन है. किन्तु स्वयं की योग साधना के बारे में बहुत ही कम लिखा है. महाराज रातभर जालंधरबंध की दशा में सोते थे. उस समय के प्राणायाम की साधना से समाधि की दशा को प्राप्त किया जाता है. महाराज एक स्थान पर लिखते हैं कि स्वामी विद्यारण्यजी के इस कथन की सच्चाई का अनुभव महाराज को हुआ था.

योगियों को चेतावनी

एक प्रसंग में अपनी नम्रता न छोडते हुए आधुनिक योगियों को चेतावनी देते हैं -

''महायोगियों के समक्ष मैं बच्चा ही हूँ, फिर भी आजकल के योगी अनेक भूले अवश्य करते हैं, यह कहने में जरा भी झिझक नहीं होती.''[१०]

इन शब्दों में उनका आत्मविश्वास, बडों के समक्ष नम्रता और अन्य गलत कहनेवालों का खंडन करना आदि सब कुछ उचित मात्रा में महाराज में दिखाई देता है.

चमत्कार

महाराज कई प्रसंगों में चमत्कार का निषेध करते हैं. किन्तु उनके जीवन में अनेक चमत्कार घटित हुए हैं. इन सारे चमत्कारों का प्रयोग उन्होंने केवल संसारवासना में फँसी साधक की बुद्धि को मुक्त करने और उसे परमार्थमार्ग पर चलने के लिए उत्साहित होने के लिये ही किया है.

हरदा की निवासी यमुनाबाई केंकरे को लिखे पत्र [११] में बलवंतराव को महाराज ने दो रूपों में दर्शन देने की याद दिलाई है. किन्तु यहाँ भी उसी पत्र मे चमत्कार को ही सर्वस्व नहीं मानने को कहां है. क्योंकि चमत्कारों में फँसा मनुष्य ब्रह्मवस्तु को छोडकर आश्चर्य में ही बहने लगता है, इस बात को उन्होने स्पष्ट किया है.

इन सब प्रसंगों से एक बात अवश्य प्रतीत होती है कि

महाराज में चमत्कार दिखाने कि शक्ति थी किन्तु परमार्थ में वह बहुत उपयोगी साबित नहीं होती, इस बात को भी वे जानते थे और अपने इस विचार का वे दृढतासे प्रतिपादन भी करते थे. शिष्यों को लिखे ७-८ पत्रों मे उन्होने परमार्थ मे होनेवाली बुआबाजी की तिखे शब्दों में भण्डाफोड की है.

आत्मविश्वास

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह थी कि महाराज को अपने ही धार्मिक अधिकारों के बारे में और बुद्धि की चर्चात्मक शक्ति के बारे में दृढ विश्वास था. वे अपने बारे में कहते हैं -

''धर्म का निर्विकार रीति से विचार करने वाला,
शूद्रवर्ण में,
इस सृष्टि में,
मैं अकेला ही हूँ,
यह तुम्हें निश्चित ही जान लेना है.'' (१२)

उनका यह आत्मविश्वास दुर्दम्य और अनोखा था. विभिन्न संप्रदायों तथा धर्मों के परस्पर भेद को दूर करनेवाली मूलभूत समन्वयकी समर्थ दृष्टि उनमे थी। इसे देखकर यह विश्वास दृढ हो जाता है कि बात तो पते की है. किन्तु इसके साथ ही उन्होंने अपने आपको दीन रूप में भी स्वीकारा है. ''लघुत्वाचेनि मुद्दले । बैसला गुरुत्वाचे सेले.'' (अमृतानुभव) इस दीनभाव के कारण ही उन्हें गुरुत्व की प्राप्ति भी हुई. इस गुरुता के प्रति भी उन्हें भान था. एक पत्र में वे लिखते हैं -

''मेरे पास शब्दशक्ति नहीं है किन्तु आपकी कृपा से परमार्थ प्रक्रियाएं से संपन्न रचना करने में मैं सक्षम हूँ. यही मेरी विशेषता है. श्रीएकनाथ-तुकाराम आदि संतों में भी शब्दशक्ति की अपेक्षा यही 'विशेष' था. इसी कारण मुझे संसार के किसी भी पंडित का, आपकी कृपा से, भय नहीं लगता.'' (१३)

महाराज के चरित्र के अनेक प्रसंगों से, तथा विद्वानों द्वारा मान्यताप्राप्त ग्रंथों के मर्मग्राही क्षमता से, यह 'विशेषता' खास तौर पर दृष्टिगत होती है. उन्होंने योग, ज्ञान, भक्ति आदि में नई नई प्रक्रियाँ निर्माण कर के अपने अनुयायियों के परमार्थ साधन में उन्नति करने का

प्रयास आजीवन किया. ये प्रक्रियाँ नई होकर भी पुरानी रीतियों के कतिपय विरोध में नहीं हैं; यह भी एक विशेषता है. इससे यही स्पष्ट व्यक्त होता है कि यह प्रक्रियाँ-प्राविण्य महाराज के पास समझबूझ के धरातल पर था.

लघुत्व से महत्ता

अपने दोषों को खुलकर बताने के लिए बडे साहस की जरूरत होती है. वह महाराज में पूरी तरह से है. वाचस्पति की सर्वज्ञता उनमें है. फिर भी बडप्पन से वे डरते हैं. यदि उनके गुणों का वर्णन कोई करने लग जाए तो व्याध के जाल में फँसे हिरन की तरह उनके मन पर ठठ लग जाता है। ऐसा होकर भी,

'स्वधर्मी थोरू । अवसरी उदारू ।
आत्मचर्चे चतुरू । एऱ्हवी वेडा ॥

धर्म की जिज्ञासा शांत करने में और आत्मचर्चा में महाराज का कोई सानी नहीं रखता था, किन्तु उनके लिए आदरभाव व्यक्त होने पर उनका मन घबराता था. यह बात उनके अभंगों से स्पष्ट होती है -

''मिष्टान्न के बिना मेरा एक दिन भी गुजरता नहीं है. क्रोध के बिना यह मन उजाड बन जाय ऐसा भी कभी नहीं हो सकता. दूसरों के गुणदोषों की ध्वनि मेरे मुख में सदैव गूँजती रहती है। किंतु लोगों के समक्ष मैं सदैव भोला-भाला बनता हूँ.'' (१४)

''मुझे धन की आस है. सु-समय की ओर देखे बिना मैं व्रत आरंभ करता हूँ. उपरिउपर धर्म का ढोंग रचता हूँ. गोपी वेश की मैंने विडंबना की है. फिर भी, हे भगवान् मेरी सत्व परीक्षा न लो. गुण देखने की इच्छा करेंगे तो मुझमें दोष ही नजर आएंगे. अतः मेरे दोषों को नजरअंदाज करके केवल कृपा करें यही प्रर्थना ! (१५)

ब्राह्मण मेरी सेवा करते है. एकादशी के दिन भी ब्राह्मण मुझे पादुका लाकर देते है. ऐसी मेरी भयानक स्थिति आ खडी है. हमारे चरित्र तो पापों के पुराण है. (१६)

हे श्रीकृष्ण भगवन्, आपकी कामिनी कहलवाने में मुझे शर्म लगती है क्योंकि मन में स्वामिनी बनने की इच्छा है. धूप-वर्षा तो मैंने सही नहीं, तप भी नहीं किया, फिर भी बिना किसी कष्ट के बेशर्म की तरह मैं भक्ति का फल माँगती हूँ. किन्तु इस ओर आप ध्यान न दें. (१७)

इस तरह ईश्वर के पास उन्होने करुणा माँगी है.अन्यों को पत्र लिखते समय उन्होंने अपना मन खोलकर रखा है.-

''मैं निस्पृहता का दिखावा मात्र करता हूँ. फिर भी व्रत के लिए और ग्रंथों के लिए मेरे मन में पैसों की भी आस होती है. ''(१८)

देवास के तुकोजी राजे पवार को लिखे पत्र में महाराज के शब्द हैं - ''मेरी विद्या महान है यह बताकर आपको किसी ने धोखा अवश्य दिया है. ज्ञानेश्वरी के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जानता. मैं चमत्कारों से आपके मन को रिझा नहीं सकता. जितना कहतां हूँ उतना विरक्त मैं नहीं हूँ. कबित्व करता हूँ, तो सम्मान पाने के लिए. आपके घर मेरा सम्मान हुआ तो मेरा मन चौकडी भरने लगेगा; यही भय लगता है.'' (१९)

स्वामी वासुदेवानंदसरस्वतीजी ने महाराज पर आरोप किए थे कि ''वे शूद्र होकर भी वेदोच्चार करते हैं और पुरुष होकर भी स्त्रीवेश धारण करते है. यह धर्म के विरुद्ध है.'' इस दोष को महाराज निस्संकोच भाव से स्वीकार करते हुए कहते हैं कि ''शास्त्र के अनुसार मैं दोषी हूँ किन्तु अब यह व्यसन छूट नहीं सकता.''

''मेरे विचारों में दूसरों को ज्ञान दिलाने का सामर्थ्य नहीं है. मुझे शास्त्र व्युत्पत्ति और व्याकरण नहीं आता. यह सब पूणे में साबित हो चुका है. सांख्य वेदांत नहीं आता यह बर्डी में सिद्ध हो चुका है. मेरे असत्य भाषणों को तो अनेक लोग जानते हैं. यह मैं नही बताता तो असत्य भाषण करने का आरोप मुझपर लग जाता. सत्य लिखने पर भी यह पाप तो मेरे सिर है ही. इस तरह तो दोनों ओर से मैं पापी सिद्ध हुआ. मैं सब ओर से ही दीन हूँ. अतः आप को मेरा जितना पसंद आएगा उतना ही ग्रहण कीजिए.'' (२०)

इस तरह से महाराज ने बिनती की है.

पूर्वकर्म बुरे किन्तु परमेश्वर दयालु

परमेश्वर के दयालु होने की बात महाराज अपने ही अनुभवों से कहते हैं. वे कहते हैं - ''मै अंधा हँ, यही मेरी नियति है. संचित को भला कहता हूँ, तो अनेक विकार चाहे जब सिर उठाते है. कर्म भले हैं कहता हूँ, तो 'मेरा ब्राह्मणों से सेवा करवा लेना' यह तो सब जानते हैं. ऐसे में भी मुझमें चर्चा ज्ञानसंबंधी जो इतना आत्मविश्वास आया है

वह परमेश्वर की कृपा के सिवाय और क्या हो सकता है?''

इस तरह से पूर्वकर्मों के कारण अंधापन प्राप्त होना, यह महाराज ने कई बार कहा है। अपने ही दोषों की अभिव्यक्ति करके 'अधिकांश लोग मुझसे अच्छे हैं' यह वे अपने सीने पर हाथ रखकर कहते हैं. यह अमानित्व का भाव उनमें इतना समाया था कि पूणे में एक बार किसी वेश्या के हाथ से अपमानित होने का प्रसंग उन्हों ने जानबूझकर लाया था. किन्तु आसपास के लोगें ने ऐसा कुछ होने नही दिया. (२१) इस तरह से उनकी इस नम्रता में भी लोकविलक्षणता ही दिखलाई देती है.

शिक्षा प्रणाली

स्वयं के प्रति महाराज का व्यवहार दीनता का है किन्तु अपने अनुयायियों की उन्नति के संदर्भ में उनका आत्मविश्वास दृढ था. अतः साधक परमार्थ के मार्ग पर अग्रेसर होने में आश्वस्त हो उठते थे.

महाराज का स्नेह भाव उनके पत्रों में बडी उत्कटता से व्यक्त होता है. अनुयायियों की उन्नति के लिए महाराज कुछ भी करने के लिए तत्पर होते थे.

बालकाल में ही वैधव्य प्राप्त हुए ताईजी को लिखे पत्र में वे उसे आश्वस्त करते हुए वे कहते है कि ''नरक में आकर भी मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा या तुम्हारी कोख से पुनः जन्म लेकर तुम्हें ईश्वर की प्राप्ति करवा दूँगा.'' (२२) ऐसी उत्कटता से व्यक्त हुआ शिष्यप्रेम मुश्किल से ही देखने को मिलता है.

स्नेहशीलता

मातोश्री ताई को लिखे गए यह ग्यारह पत्रों से महाराज की शिक्षा-प्रणाली किस प्रकार थी, यह स्पष्ट होता है. योगाभ्यास की प्रक्रिया, विघ्न निवारण के उपाय आदि अनेक साधना के विषय पत्रों में स्पष्ट किए गए हैं.

उनका भय दूर करने के लिए महाराज लिखते हैं. - मुझे पुनर्जन्म का भय नहीं है. अगर तुम्हारे जैसी निर्मल रत्न की कोख से जन्म पाऊँ तो मैं सच्चा भाग्यवान हूँ. तुम्हारे प्रेमरूपी अमृत से सराबोर वचन मुझे जीवनदायक लगते हैं. मेरी क्या भूल हुई जो तुमने मेरे पत्र

का उत्तर नहीं भेजा? [२३]

तुझा प्रेमळ पत्रलेख । वाचूनि हारपले सर्व दुःख ।
वाटे जणुं ब्रह्मसुख । जवळी आले ॥४॥
तुझी वाक्यवृत्ती मधुरा । एथुनी सुटल्या विमलांबुधारा ।
सर्व प्रेमाचा निगूढ थारा । एकसां धारा॥५॥[२४]

इस तरह हर शब्द से मानो स्नेह झरता नजर आता है. किन्तु इतना उपदेश करने के बाद भी महाराज कहते हैं कि, 'तुम्हें भाएं तो करो अन्यथा भूल जाओ.' इन पत्रों में माँ का वात्सल्य, पिता का आश्वासन और सखि का मनोगत इन सब का मधुर मेलन है.

नवनीत जैसा कोमल किंतु वज्र से भी कठोर

मुळे मास्तर और शास्त्रीजी को महाराज लिखते हैं - ''आपने मुझे मिट्टी से उठाया है यह मैं कभी नहीं भूलूँगा.'' इतनी कृतज्ञता उनमें है. किंतु समय की आवश्यकतानुसार उन्हें वे डाँटते भी हैं.

मज पायी लोळवावे । अथवा तुम्ही शरण यावे ।
कोणेही प्रकारे करावे । बरवेपण आपुले ॥[२५]

आप और हम एक ही हैं. अतः कठोर वचन कहता हूँ. मुझे अपना ही बालक समझें और कृपा कर अपनी आँखें खोलें. आत्मा को सार्थक करने वाले पुरुषों को क्षुद्र कारण के लिए हम अपने हाथों से जाने नहीं देते'' इस प्रकार का आश्वासन भी महाराज देते हैं. [२६]

विश्वरूप दिखलाने की प्रतिज्ञा

''आपको तप और चिंतन की प्रक्रिया समझाई है. उसकी पूरी प्राप्ति करवाने की जिम्मेदारी मेरी है. आप सच मानें या ना मानें, मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा. [२७] मैं आपको गीता में वर्णित विश्वरूप दिखलाऊँगा पर इससे पहले मेरा कहा आपको मानना होगा. यह एक ही जन्म में संभव है किन्तु आपको धैर्य और प्रयत्न से वैराग्य संपत्ति को धारण करना होगा. क्या यह आप मानेंगे? तब आगे का उपाय बतलाऊँगा.''

इस तरह से विश्वरूप दिखलाने का आश्वासन महाराज देते हैं. किन्तु उसके लिए आवश्यक वैराग्य के लिए वे कान उमेठने से भी चूकते नहीं.

कान उमेठना

वह कहते की - ''आप मुझे यदि सच्चे प्रेम पाश से बाँधते हैं तो ज्ञानेश्वरजी की सौगंध लेकर कहता हूँ की, मैं आप को छोड कर एक कदम भी आगे बढ नहीं पाऊँगा. ''

''मैं सर्वज्ञ हूँ यह आप निश्चयपूर्वक मानते हैं किन्तु मेरे सर्वशक्तिशाली होने के बारे में आप लोग सशंक हैं. ''

इतना पैरों पर लोटने के पश्चात् भी आपका मन अगर द्रवित नहीं हो सकता, तो आप मेरे से क्या करवाना चाहते हैं? यह तो बताइए. मैं केवल अन्न के लिए यह कहता हूँ ऐसी बात नहीं है. क्योंकि जैसे कुत्ते अपना पेट भरते हैं वैसे हम भी है. इस पर भी आपको स्वयं के हित की चिंता न हो तो मैं क्या अपना भेजा निकाल आपके हाथों में धर दूँ?''

''मैं आपका मुफ्त का दास होने के लिए तत्पर हूँ पर आप समझ नहीं सकते यह आपकी नियति! यूँ नियति को कोसने की अपेक्षा श्वानसूकरादि के रूप में जन्म पाते तो अच्छा था. क्योंकि पत्थरादि प्राणी जड क्यों न हो अपने ही स्थान पर पलभर आराम तो कर सकते हैं. किन्तु,हम-आप तो

'दिन में लोगों के दास और रात में स्त्रियों के पास' होकर आराम से च्युत हो चुके हैं.'

आप अपना हित करते समय मुझ पर कितना ही क्रोध क्यों न करें, आप सब मेरे लिए सिरताज है. किन्तु अपने हित की और ध्यान न देते हुए श्मशान-वैराग्य-जल से आँखें भरकर 'मेरी वाहवा कहना' मुझे पंसद नहीं है.''

''हे तात, आप जैसे-जैसे मुझ पर विश्वास करने लगेंगे वैसे-वैसे इस और अगले जन्मे में आपको अनंत प्रचीतियाँ आएँगी.''

अंधपरंपरा

''अब आप सोचेंगे कि अंधे मन से विश्वास करना चाहिए या नहीं? तो हे तात, आपकी आँखे ही नहीं हैं अतः आपको अंधे के समान ही विश्वास करना है. अंधा अगर आँखवाले का हाथ थामकर भी उसके प्रति विपरीत धारणाएँ बना लेता है तो उसे क्या फल मिलेगा!

१ - आप परमार्थ के बारे में अंधे हैं.

२ - मैं संसार के प्रति अंधा हूँ.

३ - ज्ञानेश्वर महाराज समाधि में आँखे मूँदकर बैठे हैं.

४ - भगवान शंकर श्मशान में आँखे मूँदकर समाधिस्थ हैं.

५ - श्रीकृष्ण गोपियों के गुलाल डालने के कारण अपनी आँखे मूँदकर रासक्रीडा का आनंद ले रही हैं.

यह अंधों की परंपरा ही हमारे सब के सुख का आधार है.''[२४]

इस तरह लोगों की मनोवृत्ति के अनुसार कभी लीन होकर, कभी प्रेम से, कभी कान उमेठकर आदि उपदेश की विविध और लोकविलक्षण पद्धतियों का सहारा लेते हुए महाराज अपने अनुगामियों में सात्विक भाव की वृद्धि करते हैं.

किन्तु चर्मचक्षू न होने के कारण अपने शिष्यों से - पढने-लिखने से लेकर तो जूते लाने तक की- सभी प्रकार की सेवा करवानी पडती थी. अतः महाराज के मन में क्लेश का भाव अवश्य रहता था. शिष्य के प्रति जो कृतज्ञ भाव उनके मन में था, उसे उन्होने अपने सांप्रदायिक मंगलाचरण में व्यक्त किया है.

शिष्यपंचायतन को नमन

शिष्यपंचायतन **१.** नारायणजी पंडित, **२.** हरिभाऊ केवले, **३.**दत्तात्रेयजी खापरे, **४.** व्यंकटेशजी देशपांडे और **५.** लक्ष्मणराव कविमंडन और इतर लेखक-पाठकगण को नमन किए बिना मंगलाचरण कहने वालों को वे संप्रदाय से बहिर्भूत करते है.[२९]

इसी संदर्भ में उनकी गुरु ज्ञानेश्वरजी को की हुई विनती देखने लायक है -

''हे ज्ञानेश्वरतात, मैं बडा ही पतित हूँ. किंतु जिन्होंने मुझपर भरोसा किया है उनका उद्धार आप मुझसे पहले कीजिए. मेरे मस्तक पर उनका बोझ है. उसे आप अपने प्रताप से उठा लीजिए, मेरी इतनी ही एक इच्छा को, हे ज्ञानेश्वर माउली, तूं पूरी कर दे.'' [३०]

परि जया वाटे माझाचि आधार । तयांचा उद्धार तुम्ही कीजे।।
आपुल्या प्रतापे उचलोनी ओझे । माझे आधी कीजे भवज्ञन ।।
न करिता माझ्या प्रतिज्ञेचा भंग । वासना तरंगनिवारी हे ।।[अभंग६१]

विद्या का स्रोत तथा ग्रंथरचना

चर्चा और ग्रंथरचनाओं में महाराज युक्तियों से अपनी बात को Ì gµ¤o Nÿ°ŒzNÿ °yoy EœŒ¢oz Ò¢[३१] आज के बुद्धिवादी युग में शास्त्रों और अनुभव को तर्क की कसौटी पर कसना आवश्यक था. इसीलिए महाराजजी ने युक्तियों की चौखट में अपनी सारी वैचारिक साहित्य रचना की.

महाराजजी ने मुळेमास्तरजी को लिखे पत्र में अपनी विद्या का स्रोत बतलाया है.[३२]

''मेरी विद्या कितनी है, यह मैं सबके समक्ष घोषित करता हूँ. मुझमें वेदों के प्रति पूज्यबुद्धि है. गीता, महाभारत, भागवत, योगवासिष्ठ, वाल्मीकि रामायण इन ग्रंथों का जितना संभव था उतना श्रवण तथा अनुशीलन किया है. ज्ञानेश्वरी, एकनाथी भागवत, तुकारामगाथा, तुलसी रामायण के ग्रंथों का पठन इतना ही मेरा व्यासंग है. इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं आता. यह ढिंढोरा पीटकर मैं कहता हूँ.''

महाराजजी के कथन में इतनी नम्रता नजर आने के बावजूद उनकी सौ से ऊपर १३४ रचनाओंकों को एक दृष्टि में समेटना संभव नहीं है. अपनी इतनी विशाल ग्रंथ रचना का प्रयोजन बतलाते हुए भवभूति के वचनो का आश्रय लेकर वे कहते हैं -

''जो काई हमारा अपमान कर रहा है, उसके यह यत्न नहीं है. मेरे समान ही अंत:करण रखनेवालों के लिए यह सारा जंजाल है. भविष्य में कभी तो, और विशाल धरती पर कहीं तो, मेरे विचार पसंद किए जाएँगे - ऐसा कोई तो होगा ही. उनके लिए ही इन ग्रंथों की रचना मैंने की है.''[३३]

आलोचनाओं को उत्तर

आप इतना स्पष्ट लिखते हैं तों लोग आपकी आलोचना करेंगे.[३४] इस आक्षेप का उत्तर वे इस प्रकार देते हैं -

१. वत्स, मूर्ख लोगों के मन को भाने जैसे मेरे वचन तुच्छ नहीं होते. मूर्खों से आलोचना न हो तो लेखन मे निश्चयही दोष है यह साबित साबित होता है.

२. सदाचारी विद्वानों से डरने का मुझे कोई कारण ही नही है. उनसे तो मुझे अपने आप में सुधार लाना है.

३. दुराचारी विद्वान के पास तो इतनी ताकत ही नहीं है कि वह मेरा लेख अपनी आँखो से देख सके फिर वह भला आलोचना केसे करेगा?

४. इसके अलावा ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त सारी विद्या यदि सदाचारविहीन हो तो मैं उन पर थूँकता हूँ.

५. और व्यवहारविद्या का मिश्रण हुए बिना केवल ब्रह्मविद्या से किसी पर आलोचना नहीं की जा सकती. अतः मैं सदैव निडर हूँ.

विविध भाषाशैलियों में रचना

आधुनिक पद्धति में भाषा-भिन्नता के कारण लेखकों में भिन्नता देखी जाती है. एक बार शिवगंगा मठाधिपति शंकराचार्यजी ने कहा था- 'इसकी भाषा विद्यारण्यजी की भाषा नहीं जान पडती अतः यह ग्रंथ विद्यारण्यजी का नहीं है. इसका उत्तर महाराज अपना ही उदाहरण देकर देते हैं -

''एक ही व्यक्ति अनेक शैली में लिख सकता है. यह मेरे जैसे अल्पमति की पुस्तकों से भी स्पष्ट होता है.''

महाराज के इस कथन में कोई असत्यता नहीं है. निगमांतपथसंदीपक, संस्कृत मे सूत्र रचना, भक्तिभाष्य, प्रेमनिकुंज, भक्तिपदतीर्थामृत, साधुबोध, तुंबडी, बाराखडी, वऱ्हाडी भाषा में रुक्मिणी स्वयंवर आदि ग्रंथों की शैलीओं में बडी ही विविधता है. आधुनिक दृष्टि से देखा जाए तो इन ग्रंथों के ग्रंथकार भिन्न-भिन्न होने चाहिए. पर सच्चाई यह है कि यह सारी रचना महाराज ने स्वयं की है, उनकी अकेले की ही है. अतः आधुनिक विद्वानों द्वारा मान्यताप्राप्त सिद्धांत-

''भाषा शैली की भिन्नता से लेखकों की भिन्नता'' की पहचान- आत्मानुभवी सत्पुरुषों के साथ लागू करना उचित नहीं, यह मंतव्य महाराजजी ने स्वयं अपने ही उदाहरण से सिद्ध कर दिखलाया है.

स्वयं के हि ग्रंथों का मूल्यमापन

महाराजकी दृष्टि से उनकी अपनी सारी ग्रंथ निर्मिति ज्ञानेश्वरजी के ग्रंथों पर भाष्य रूप में है, स्वतंत्र नहीं है. अपने ग्रंथों को इस प्रकार

से गौणत्व दिलाना महाराज की उपासना और नम्रता के अनुरूप ही है. यह केवल निरहंकारिता है. जिस तरह से गीता पर भाष्य होकर भी ज्ञानेश्वरी का स्वतंत्र महत्त्व कम नही, उसी तरह से महाराज के ग्रंथो का स्वतंत्र अस्तित्व और महत्त्व रत्तीभर भी कम नहीं है, यही अभ्यासकों को जान पडता है.

'सुखवरसुधा' में महाराज ने स्वयं अपनेहि ग्रंथों के मूल्यमापन की रीती बतलाई है. वे कहते है कि -

''मेरे पद्य ग्रंथ सब प्रमाण है. याने पद्य ग्रंथों में मेरा विचार चारु रूपसे मैंने लिखा है. वैसेहि गद्य लेखन पद्य के साथ हो तो उसे भी प्रमाण मानना चाहिए. किंतु समयोपदेश तथा समय समय पर लिखे हुए पत्रादि या संवाद सामनेके विशिष्ट व्यक्तिओं के लिए होनेके कारण आत्यंतिक प्रमाण समझना अनुचित है. वे यदि पद्य के अनुरूप हो तोहि प्रमाणभूत है किंतु पद्य के विरोधी हो तो अप्रमाण है.''

फिर उन्होने स्वयं के अप्रमाण विचारों का संदर्भ भी दिया है.

उसी प्रकार महाराजने उनके समकालीन महापुरुषों को पद्य ग्रंथो मे पुरा सम्मान देते हुए भी - उनके भाषण, संभाषण या पत्रादि समयोपदेश में व्यक्त हुए भारतीय सिद्धान्तविरोधी विचारों का पुरा खंडन किया है.

पंतप्रधान अटलबिहारी वाजपेयीजी उनके बारे में कहते है की -

'दुसरों के विचारों का खंडन करते समय भी उनकी समन्वयदृष्टि विचलित नही होती.' (ग्रंथविमोचन दिल्ली२६-७-१९९९)

यह ग्रंथप्राण्यविचार महाराज के खंडन-मंडन, वितंडा और समन्वय आदि सारे वैचारिक साहित्यनिर्मिती की नीव है, ऐसा समझना उचित होगा.

गलतफहमियाँ और उनका सामना

महाराज की आत्मकथा [३५] और मुमुक्षू मासिक पत्रिका (ता. १९-११-१९१४) में छपा पत्र [३६] इन दो स्थलों पर महाराज ने उनके बारे में लोगों के बीच फैली गलतफहमियों का उत्तर दिया है. पत्र के प्रारंभ में ही वे कहते हैं-

''अपनी बडाई करना सज्जनों की रीति नही है किन्तु अधर्म

पर रोक लगाने के लिए कभी कभी अपनी प्रशंसा करनी चाहिए, इस वसिष्ठ वचन को आधार मानकर आज तक न कहे गए वचन मैं मजबूरन कह रहा हूँ.''

१ - ब्राह्मण ग्रंथ लिखते हैं और महाराज का नाम उस पर डालकर उनके समक्ष रखते हैं.

२ -लोग पढकर सुनाते हैं और उस पर महाराज यहाँ-वहाँ का कुछ लिख देते हैं.

३ - शौच के समय ग्रंथ पढते हैं इसका अर्थ यह है कि उन्होनें यक्षिणी साधन किया है.

४ - ब्रह्मचर्य की महत्ता को वे मानते नहीं है.

इन सारी गलतफहमियों का निराकरण महाराज करते है. महाराज अंत में इस प्रकार लिखते हैं -

''परिस्थितिवश यदि मैं अधर्म की गर्ता मे डूब गया हूँ
तों भी मुख से धर्म की सोच जगाकर ही मरूँगा,
यह मेरा दृढ संकल्प है.'' (३७)

आत्मकथा में वे उनमें दोषाभास कैसे उत्पन्न हुए और उस कारण आसपास के लोगों पर उनका क्या प्रभाव पडा यह बतलाते है.

''जब माधान में था तब मुझे पैसों की जरूरत नहीं थी किन्तु अमरावती आने पर ग्रंथपाठक और लेखक सदैव मेरे साथ रहते थे अतः उनके खाने-पीने के लिए, ग्रंथ खरीदने के लिए और व्रत आदि कार्य के लिए पैसों की जरूरत महसूस होने लगी. तब कुछ असत्य का आभास देती वाणी का सहारा लेना पडा. अतः एक ओर उन्नति तो दूसरी ओर अवनति का प्रारंभ हुआ.''

इस तरह से महाराज ने अनेक स्थलों पर साफ मन से आत्माभिव्यक्ति की है. इसके बल पर ही उनके आध्यात्मिक आत्मनिरीक्षण की खोज की जा सकती है. इन सबका सर्वांगीण विचार करते ही आत्मानुभवी सत्पुरुषों के अंतःकरण की कोमलता की थोडी-सी पहचान हो सकती है. लोगों के उद्धार के लिए सत्पुरुष सब प्रकार के यत्न करते रहते है. उसके लिए निंदा, अपमान आदि सहन करते समय उन्हें कुछ भी बुरा नहीं समझते. साथ ही उनके ऊपर-ऊपर दिखलाई

देने वाले दोष भी - अनुयायियों को बोध देने के लिए लाया ऊपरी आवेश मात्र होता है. इसका अर्थ वे 'आहार्य' होते हैं, ऐसा शास्त्रीय भाषा में कहा जा सकता है.

परिस्थिति का साहित्य पर प्रभाव

प्राचीन संतों का युग और परिवेश

प्राचीन संतों के काल की परिस्थिति बीसवीं सदी की परिस्थिति से सर्वथा भिन्न ही थी. श्रीज्ञानेश्वर महाराज के बाद इस्लाम के आक्रमण से सारे महाराष्ट्र में अस्थिरता आ चुकी थी. घर सुरक्षित न था, माँ-बहनों की लाज भी सुरक्षित न थी. संत रामदासस्वामी के काल में स्नानसंध्या करने के लिए शुद्ध जल भी मिलना दुर्लभ हो गया था, उसे तो मुगलों ने गंदा कर दिया था. ऐसी बडी जटिल स्थिति में भी समाज की सांस्कृतिक स्थिति अच्छी थी. मुगल आक्रमक थे और विजेता थे अतः उनकी भाषा का प्रभाव मराठी पर हुआ था.

किन्तु उनकी संस्कृति महाराष्ट्र को जादा प्रभावित नहीं कर पाई! मुसलमानी आक्रमण पाशविक और असंस्कृत था. उन्होंने बाहरी राजनीति में अवश्य सफलता पाई किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में पुरानी भारतीय परपंरा के अनुसार ही ज्ञानदान का कार्य जारी था. नई पीढी संस्कृत पाठशालाओं से शास्त्राभ्यास अवगत कर रही थी. सारे जनजाति के बहुजन समाज पर कथा, कीर्तन, पुराण, प्रवचन इससे सुसंस्कार हो ही रहे थे. कीर्तन-पुराणों के माध्यम से - अच्छा क्या है? बुरा क्या है? धर्म कौन-सा और अधर्म कौन-सा? किसे नीति कहें और किसे अनीति कहें? उसकी जन्मघुटी बचपन से ही सारे समाज को मिल रही थी. सुशिक्षितों में शास्त्राभ्यास के कारण संस्कृति का सार्थ अभिमान था और सारें समाज में गुणों की कद्र करने की योग्यता कायम थी. अतः सारे समाज में सद्‌गुण संपन्नता अच्छी मात्रा में उपलब्ध थी. सत्प्रवृत्ति के बीज कायम थे.

ऐसी स्थिति में श्रीएकनाथ- तुकाराम जैसे संतों ने समाज के सभी स्तरों पर व्यक्तियों की पारमार्थिक उन्नति हो सके इस हेतु प्रेम से सराबोर सगुण भक्ति को अपनाया. उन्हें शास्त्रीय पद्धति की आलोचना या मीमांसा करने की विशेष आवश्यकता ही न थी. वामन पंडित जैसे विद्वान भी भक्ति को सर-आँखो पर धरते थे. सगुण-निर्गुण

की योग्यता एक समान मानी जाती थी. अतः संतों को सगुण भक्ति के विषय मे, शास्त्र के आधार पर विशेष रूप से कुछ कहने लिखने की जरूरत महसूस नहीं हो रही थी. संत एकनाथजीने

'निर्गुणाहुनी सगुण न्यून । मानी तो महामूर्ख जाण'

आदि वचन भागवत, रामायण आदि मराठी ग्रंथों में लिखे ही है. उनके युग में निर्गुण का अधिक बोलबाला न था अतः भक्ति की शास्त्रीयता पर या खंडनमंडनपर संतों ने अधिक बल नहीं दिया.

श्रीएकनाथजी ने मुगलों के भौतिक आक्रमक से भयभीत समाज को रामायण की कथा सुनाई. पुरानी वीरगाथाएँ गाकर देश के प्रति प्रेमभाव जगाया. उसी सूत्र से आगे चलकर समर्थ रामदास स्वामी और छत्रपति शिवाजी के समान नरवरों का समाज के मंथन से उदय हुआ. इस्लामी आक्रमण का सामना करने का साहस समाज में जाग उठा और हिंदवी स्वराज्य निर्माण हुआ. समर्थ रामदासजी ने रामभक्ति की नींव डाली, बलोपासक हनुमान की संपूर्ण हिंदुस्थान के ग्राम और नगरों में स्थापना की और हरीकीर्तन के साथ ही देशभक्ति और राजनीति के पाठ भी सारे समाज को सिखाए.

किन्तु ऐसी सारी सामाजिक परिस्थिति में विदेशी इस्लाम के बाहरी आक्रमण को दूर करने का यत्न प्रमुख रूप से हुआ था. उस समय संस्कारसंपन्न समाज में वैदिक और पौराणिक श्रद्धा के स्थान सुरक्षित थे. अतः जान-बूझकर सांख्य, योग, न्याय, संगीत, आयुर्वेद, प्राचीन विज्ञान आदि पुराने आर्यशास्त्रों पर ग्रंथ रचना करने का कार्य संतों पर आन पडा नहीं था.

किंतु उस युग में भक्ति के क्षेत्र में भोंदूगिरी अपना सिर उठा रही थी. लोग चमत्कार को ही अध्यात्म समझ रहे थे. अतः श्रीतुकाराम-एकनाथ आदि संतों ने इन आडंबर दिखावा करने वालों को कडे शब्दों से फटकारा है.

तोंवरी तोंवरी माळांचे भूषण ।
जों तुकयाचे दर्शन झाले नाही ।।

इस आत्मविश्वास से श्रीतुकाराम जैसे संतों ने परमार्थ की दुकानदारी करनेवाले लुटेरों को मुँहतोड जवाब दिया है. उसी प्रकार रामदासजीने भी चमत्कारों को ही साधुता मानने वालों की खबर ली है.

इस तरह सामाजिक परिस्थिति के अनुसार संतों का कार्य हुआ था. पर उसमें भी मुख्यतः हरिकीर्तन के लिए अर्थात समाज के पारमार्थिक उन्नति के लिए- प्राचीन संत कायावाचामन से डटे रहे. उनकी प्रासादिक अभंग रचना गाँव-गाँव में आज भी गाई जाती है.

'संतों की वाणी' : 'समाधि भाषा'

संतों की वाणी 'समाधि भाषा' होने के कारण उन अभंगों का अध्ययन करते-करते भक्ति का अंकुर हृदय मे फूट पडता ही है. उसी से आगे चलकर ज्ञान-वैराग्य प्राप्त होते ही अंत में पराभक्ति भी प्राप्त होती है और साधक सिद्ध बन जाता है. इस तरह से पुराने संत साहित्य में भावभक्ति का रस अधिक है.

किंतु महाराज के साहित्य में भक्ति के साथ अन्य आर्यशास्त्रों को भी आदर का स्थान प्राप्त हुआ है. उसके कारण भिन्न है. महाराष्ट्र में संत मुकुंदराज से श्रीरामदास-तुकाराम तक कई महान संत हुए हैं. उनकी अभंग रचनाएँ ग्रंथ रूप से समाज के सभी स्तर के लोगों को मार्गदर्शन करते रहे हैं. बहुजन समाज में स्थापित भजनीमंडलियाँ इसके गवाह है. आद्यकवि मुकुंदराज, संत ज्ञानेश्वर व उनके भाई-बहन, नामदेव, जनाबाई, गोराकुंभार, सांवतामाळी, चोखामेळा, एकनाथ, रामदास, तुकाराम, बहिणाबाई, निळोबाराय इन सत्पुरुषों ने समाज के हर स्तर के लोगों को सही मार्गदर्शन किया था. किन्तु समर्थ रामदास स्वामी के बाद २५० वर्षों तक कोई भी सारे समाज को मार्गदर्शन करनेवाले संत नहीं हुए. उसका अर्थ यह नहीं कि संत ही नहीं थे. थे किन्तु उनके प्रभाव के कार्यक्षेत्र सीमित थे. और इस कारण समाज में शाश्वत जीवनमूल्य सुरक्षित रह गए. किन्तु गुलाबरावमहाराज के साहित्यिक कृति से लुप्त होती संतों की साहित्यपरंपरा पुनः जीवित हो उठी है, यूँ कहना गलत नहीं होगा. शंकराचार्यजी के समान महाराज ने अद्वैत और भक्ति के विरोध में जो भी आवाज उठी है उसका खंडन किया है और अद्वैतज्ञानयुक्त पराभक्ति के सिद्धांत को पुनः नए सिरे से प्रस्थापित किया है.

दूसरी ओर अद्वैतसिद्धान्त से खंडित मतों को भी उनके वैदिक होने की बात को वे पूर्ण रूपेण स्वीकार करते हैं. साथ ही वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ''हर किसी मतों का 'विशेष' विचार दूर

रखे तो उनका परस्पर समन्वय सहज हो सकता है.

प्राचीन ऋषियों की तरह सूत्र रचनाएँ की.

उन्होंने ब्रह्मसूत्र, सांख्य, योग आदि शास्त्रों पर समन्वयपूर्वक और पांडित्यपूर्ण भाष्य और स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे.

अभंग, पद, गीत, दोहा, ओवी, चौपायी आदि माध्यम से अपने हृदय में स्थित प्रेमभक्ति की भावमधूर अभिव्यक्ति की.

इस तरह से निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि - प्राचीन आर्य ऋषियों की परंपरा, प्राचीन भाष्यकारों की परंपरा, प्राचीन संतपरंपरा, प्राचीन शास्त्रपरंपरा को गुलाबराव महाराज ने पुनरुज्जीवित किया.

महर्षि व्यासजी की कृतियों में जिस प्रकार से भिन्न-भिन्न प्रकार के अगणित विषय उपलब्ध हैं उसी प्रकार महाराज के साहित्य में भी अनेक शास्त्रों पर मूलभूत लेखन उपलब्ध है. इस कारण संत रामदासजी के बाद याने २५० वर्षों की कालावधि के बाद महाराज के रूप में कई लुप्त हुई भारतीय परंपराएँ पुनः जाग उठी.

विपरीत परिस्थितियाँ

भारत में महाराज के समय अंग्रेजों का शासन दृढमूल हो चुका था. अंग्रेजों का आक्रमण प्रथमतः व्यापार और बाद में राजसत्ता विस्तरित करनेका का अंग था, फिर शासन दृढ करने के लिए लार्ड मेकाले ने दूरदर्शिता दिखलाते हुए सांस्कृतिक क्षेत्रों पर आक्रमण की ठानी. उसने पहले पुरानी परंपरा से चली आती संस्कृत का पाठशालाओं का अनुदान बंद कर दिया और अंग्रेजी स्कूल-कॉलेजों में आधुनिक शिक्षा पद्धति का प्रारंभ किया किंतु साथ में संस्कृत काव्य का अध्ययन भी रखा. अतः हिन्दू समाज रिझ गया. पाश्चात्यों की भौतिक शास्त्र की उन्नति देख विस्मित रह गया. हिन्दू मन पर हुए संस्कार धीरे-धीरे बदलने लगे. पहले धर्म और भारतीय शास्त्रों के प्रति आदरभाव संस्कृत शिक्षा पद्धति को अंग्रेजी और ईसाई ढंग से अपनाने के कारण (अंग्रेजी माध्यम से संस्कृत की पढाई) नष्टप्राय होने लगा.

इस तरह अंग्रेजों का यह आक्रमण केवल बाह्य न था, उसने भारतीयों के दिलों पर भी राज कर लिया. मुसलमानों की तरह झिजिया कर लगाकर नहीं तो मिठबोले ढंग से हिन्दुओं के मन

परिवर्तित किए. ईसाई मिशनरियों ने सेवा के लालच से अशिक्षितों और वनवासियों में ईसाई धर्म का प्रचार किया. शहर के लोगों को नौकरी के लोभ से अंग्रेजी शिक्षा हासिल करने के लिए बाध्य किया. इस अंग्रेजी शिक्षा से सुशिक्षितों के जीवन मूल्य भी बदल गए. उन्हें यह प्रतीत होने लगा कि हमारा धर्म या हमारे पुराने शास्त्र त्याज्य हैं. उनके उपयोगिता के प्रति संदेह का निर्माण हुआ. एम. ए. के विद्यार्थी से लेकर प्राथमिक स्कूल के बालक तक हर कोई धर्म की आवश्यकता के बारे में साशंक हो गया. पुराना सब कुछ त्याज्य है और जो नया है वह स्वीकारणीय है, ऐसी गलतफहमियाँ तेजी से फैलने लगीं.

इन परिस्थितियों में महाराज का जन्म ई. सन १८८१ में हुआ. माधान जेसे छोटे से गाँव में भी पश्चिमी विचारों को ध्यान में रखकर भारतीय तत्त्वज्ञान की सत्यता के बारे में प्रश्न पूछे जाने लगे थे.

उम्र के चौदहवें साल से ही उन प्रश्नों का महाराज ने उचित उत्तर देना प्रारंभ किया. किन्तु बाद में अपनी वाणी का प्रभाव दूर तक फैले इस भावना से वह गाँव छोड अमरावती, नागपुर, रायपुर, हरदा, पुणे, मुंबई आदि स्थानों की यात्रा करते रहे. पाश्चात्य विचारधारा को काटने के लिए लेखन करना शुरू किया.

महाराज के आसपास सुशिक्षित समाज अधिक था. पाश्चात्य विद्या से प्रभावित श्रोतृवर्ग था. पंडितों की परपंरा का विद्वानों का एक वर्ग भी था. इन सबके मन में परमेश्वर, अध्यात्म और अन्य भारतीय शास्त्रों के बारे में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कारण एक किस्म की अनास्था का निर्माण हो चुका था.

हमारी प्राचीन परंपरा यूरपके भौतिक और वैचारिक आक्रमणों के समक्ष कब तक ठहर सकेगी, ऐसा संदेह जनमानस में उभर रहा था. आर्य संस्कृति के जीवनमूल्यों पर प्रश्नों की बौछार थी. अनपढ से उच्चशिक्षितों तक सबके मन में पाश्चात्यों के भौतिक सुधारवादी विचारों ने खलबली मचा दी थी.

इस गडबडी को शांत करने का कार्य केवल किसी आत्मानुभवी सत्पुरुष के अलावा अन्य किसी के बस की बात नहीं थी. किताबी ज्ञान या केवल मनन से प्राप्त विद्या से अन्यों के संदेह को जड से उखडना संभव नही था. अतः महाराज को पाश्चात्यमतखंडन के साथसाथ आर्यशास्त्रों

को भी नए ढंग से प्रस्थापित करते हुए ग्रंथ लिखने पडे.

राष्ट्रीय जीवननिष्ठा

महाराज एक पत्र में लिखते हैं -

'आर्यों का कथनहि योग्य है,
और उसे साबित करना,
यही मेरा और मेरे हितचिंतको का जीवन-कर्तव्य है.' (३८)

इससे महाराज के मन में - आर्य संस्कृति पर लगाए आरोपों का निराकरण करने की जीवननिष्ठा कितनी प्रबल थी यह स्पष्ट शब्दों में व्यक्त हुआ है.

महाराज की इस मनोवृत्ति को समझने से यह जानना आसान हो उठता है कि उन्होंने विविध विषयों पर ग्रंथ क्यों लिखे?

डार्विन का उत्क्रांतिवाद, स्पेन्सर का अज्ञेयवाद, वैज्ञानिकों का अणुवाद, जडतावाद इनका खंडन करते हुए भारतीय सिद्धांत ही कैसे उचिततम हैं यह उन्होंने सरल भाषा में युक्तिवाद की सहायता से बुद्धिजीवी लोगों के गले उतारा है.

आधुनिक मनोविज्ञान से भोगसुलभ होने की अपेक्षा, योग का मनोनिग्रह कितना अनुभवजन्य और उचित है यह तुलनात्मक रीति से दिखलाया है.

अलौकिक व्याख्यानमाला, साधुबोध, योग प्रभाव, समयोपदेश और पत्र आदि में पश्चिमी विचारधारा का मूल्यमापन करते हुए अभ्यासकों को उचित और सामन्वयिक दृष्टि प्रदान की है.

प्राचीन भारतीय भौतिक शास्त्र के विकास की खोज कैसे की जाए, तथा न्यायदर्शन के प्रत्यक्षखंड और वैशेषिकदर्शन के विस्तार के बल पर भविष्य में भारतीय विज्ञान में संशोधन कैसा किया जा सकता है, इसका महाराज ने मार्मिक विवेचन किया है.

इस कार्य में अपने ग्रंथों में आधुनिक शास्त्रों का मूल स्वरूप किस प्रकार से बना रहेगा, इस संबंध में भी वे मार्मिक सूचनाएँ देते हैं. वे लिखते हैं -

ग्रंथरचना उस ढंग से की जाए कि -

पाश्चात्यों के आधुनिक शास्त्र, हमारे ग्रंथों के अनुवाद जान पडें.

इस बारे में महाराज ने विस्तार से किया हुआ न्यायदर्शन का

विवेचन वैज्ञानिकों के लिए महत्वपूर्ण है.

महाराज की भूमिका

श्रीगुलाबरावमहाराज ने अपने जीवन के कार्य संबंधी भूमिका संप्रदायसुरतरु, सुखवरसुधा, स्वमंतव्यांश-सिद्धांततुषार, पत्रव्यवहार और अभंगों में स्पष्ट की है. श्रीमान् नारद, भगवान् व्यास, श्रीशंकराचार्य आदि के समान स्वयं के भी धर्माधिकार के बारे में संप्रदायसुरतरु में उन्हों ने स्पष्ट लिखा है.

मधुराद्वैत संप्रदाय निर्माण के कारण और समन्वयविचार की रीति बतलाकर सभी मानव जाति को उनके अपने अपने 'स्व'धर्म की ओर प्रवृत्ति की योग्य दिशा दिखलाई है. उसी प्रकार से सांप्रदायिकों या महाराज के हितचिंतकों को महाराज के प्रति कौन-कौन से कर्तव्य हैं, यह सब कुछ संक्षेप में उन्होंने लिखा है.

प्रति कलियुग में
धर्माचार्य के रूप में आविर्भाव

हर प्रलय के बाद फिरसे में ब्रह्मदेव उत्पन्न होते है, और वेदों का स्मरण करके सृष्टि का निर्माण करते है. मन्वंतर के आरंभ में उत्पन्न हुए राजर्षि मनु स्मार्त कर्म का बोध देते हैं और अपांतरतम ऋषि वेदाचार्य व्यास होकर पुराणों की रचना करते हैं तथा वेदों को चार भागों में बाँटते है; तथा सारे विश्व में स्थानस्थान पर वहां वहां के परिस्थित्यनुसार कर्म तथा उपासना के अन्यान्य मार्गों का प्रवर्तन करते है. (अलौ. व्याख्यानमाला)

तथा शुक नारदादि और ज्ञानेश्वर-तुकारामादि भक्ति के आचार्य होकर हर युग में जन्म लेकर लोगों को भक्ति से उद्धार का मार्ग बतलाते हैं. उसी तरह श्रीगुलाबराव महाराज भी प्रति कलियुग में धर्म के आचार्य बनकर आते हैं. वे संप्रदायसुरतरु [अ.१] मे कहते है -

अपांतरम वेदाचार्य । मन्वादि स्मृत्याचार्य ।
व्यास शुकादि पुराणाचार्य । आगमाचार्य नारदादि ॥१२३॥
शंकराचार्यादि धर्मस्थापक । तात हे परमाचार्य सम्यक ।
तुकारामादि प्राकृताचार्य देख । कल्पीं कल्पीं तेचि होती ॥१२४॥
तैसी प्रतिकालि माझारीं । मज स्मृती धर्माधिकारी ।
होय, येथ म्हणता निर्धारीं । अविश्वास कां कीजे? ॥१२५॥

आम्ही बद्ध जंव आहो । तरी कल्पीं कल्पीं सदा राहो ।
मग धर्मविचारही सांगणे होवो । हाचि लोकां युगीं युगीं ॥१२८॥
आणि मुक्त मानिता आम्हास कोणी । तेणे विश्वास ठेवावा आमुचे
वचनीं । कल्पीं कल्पीं अधिकारी होवोनी । येतो आम्ही ॥

संत तुकाराम महाराज भी कहते हैं -

आम्ही वैंकुठवासी । आलों याचि कारणासी ।
बोलले जे ऋषी । साच भावे वर्ताया ॥

सर्व धर्मों का आधारतत्त्व

श्रीगुलाबरावमहाराजने सर्व धर्मों का मूल और सार्वत्रिक लक्षण 'स्वमतनिर्णय' में समझाया है -

सत्त्ववृद्धिर्भवेद् येन अन्य गुणद्वयघातिनी ।
स हि धर्मो न चान्यत् स्याद् इति स्वमतनिर्णयः॥
स्वधर्मे परधर्मे वा यत्सत्वफलसाधकम् ।
तत्तदस्तु परं धर्म्यम् इति स्वमतनिर्णयः ॥

इस प्रकार सारे जगत् के सारे धर्मों का मूल आधार इन दो श्लोकों में श्रीगुलाबरावमहाराजने सुस्पष्ट रीतीसे कहाँ है. नरमांसभक्षक वनवासियों से लेकर वेदान्ती ब्राह्मणों तक प्रत्येक मनुष्य का एकही जीवनलक्ष्य है वह याने सत्वगुण की वृद्धि. तमोगुण से रजोगुण और रजोगुण से सत्वगुण. यह प्रवासही सर्व धर्मों का लक्षण है. इसीसे चित्तशुद्धि होकर अंतिम साध्य सर्व दु:खनिवृत्ति और परमानंद की प्राप्ति होती है.

सत्वगुण की परिणत अवस्था है आत्मज्ञान और ज्ञानोत्तर पराभक्ति. इसी संदर्भ में महाराज कहते है की -

''हर कलियुग में भक्ति को पुनर्स्थापित करने के लिए मैं बार-बार जन्म लेता हूँ. भगवान् नारदाचार्य के ही रूप में ज्ञानेश्वरजी के मुख से प्राप्त आज्ञा के अनुसार श्रीकृष्णभक्ति की स्थापना करने का प्रयत्न मैं करता हूँ।'' (३९)

इस तरह से भक्ति और धर्म पर अपने अधिकार के प्रति स्पष्ट रूप से सजग रहकर महाराज ने सारा कार्य पूरा किया. अतः उनके ग्रंथ भारत के प्राचीन संस्कृति के ऋषि-परंपरा को पुनर्जीवित करनेवाले

है यही कहना पडता है.

शंकराचार्यजी ने समन्वय के बल पर अपने ग्रंथों में अद्वैतज्ञान का पुनः प्रवर्तन किया है उसी प्रकार महाराज ने वेद, पुराणों, स्मृतियों और संतों के वचनों का समन्वय कर धर्म का और भक्ति का शास्त्रीय आधार मजबूत किया है. संप्रदाय सुरतरु के २० वें अध्याय में वे लिखते हैं -

''मैंने प्राचीन आर्यग्रंथों का अनुसरण करके पूरे संसार के धर्मों का और आर्यधर्म के सिद्धांतों का समन्वय दृष्टि और अभीष्टतापूर्वक श्रीगुरु ज्ञानेश्वरजी से प्राप्त स्फूर्ति के अनुसार, या कहिए कि वह सारी स्फूर्ति मन में समाहित न कर पाने के कारण अपनी शक्ति के अनुसार, संपूर्ण विचार किया है.(४०)

(किंतु मनुष्य सदैव भूल कर सकता है. श्रुतिविरुद्ध स्मृति भी प्रमाण नहीं हो सकती, वहाँ मेरा कथन ही प्रमाण समझा जाए यह मैं कैसे कह सकता हूँ।)''

ऐहि पै जो करि है शंका । सो मोहिते अति जडमति रंका ॥

तुलसीदास

अन्य शास्त्रों के प्रति आदरभाव

महाराज कई प्रसंगों में विभिन्न भारतीय शास्त्रों का भी खंडन करते हैं. प्रसंगोपात्त यह खंडन वेदांतानुसार उचित होता है. किन्तु महाराज के मन में उन शास्त्रों का खंडन करने के बाद भी उनके प्रति पूज्यभाव निश्चितरूपसे कायम है.

कई बार अपने अनुयायियों को शिक्षा देते समय उनमें वैचारिक सूक्ष्मता लाने के लिए न्याय, सांख्य आदि शास्त्रों पर उन्होंने बहूत बार पूर्वपक्ष किया है. उसका समाधान उनको मालूम रहता था. किंतु उपस्थित किए शंकाओं का उत्तरपक्ष उन्हीं शास्त्रों का उचित अध्ययन कर उनमें ही खोजा जाए यह उनकी इच्छा सदैव रही है.

इसमें शिष्यों को सही अध्ययन की दिशा देना यह उनका प्रमुख उद्देश्य था. इस बारे में उनका एक वाक्य बडा ही महत्त्व रखता है. वे कहते हैं-

''मेरे सहज बातचीत में यदि किसी शास्त्र पर आक्षेप किया जाता है तो उससे उस शास्त्र के प्रति अनादरभाव न रखे.''(४१)

इसके विपरीत तत्त्वज्ञान की आधुनिक पुस्तकों में भारतीय

शास्त्रों पर कई आक्षेप उठाए गए हैं और उनके अपरिहार्य प्रभाव के रूप में उन शास्त्रों के प्रति अनादर भी व्यक्त किया गया, यह जान पडता है. ऐसी स्थिति में महाराज की उपरोक्त आदरबुद्धि और समन्वय की रीती बहूत मार्गदर्शक है.

अन्य संप्रदायो के प्रति आदरभाव

महाराज ने अनेक भारतीय संप्रदायों के विचारों का प्रसंगोपात्त अपने प्रखर युक्तिचातुर्य से खंडन किया है किन्तु उन संप्रदायोंकी आवश्यकता को भी वे जानते हैं. अन्य वैदिक जनों ने, स्वधर्म छोडकर उनको न अपनाएँ, इसलिए उन संप्रदाय के तत्त्वों का खंडन किया है.

किन्तु महाराज सोचते थे कि उन संप्रदाय के लोगों में अपने स्वयं के संप्रदाय के प्रति अश्रद्धा न जाग उठे. अतः वे कहते हैं -

''महाराष्ट्र में स्थित महानुभावसंप्रदाय के विचार, परंपरा से वेदानुसार ही हैं. यह सच है कि महानुभावों की तीन स्थल और उसके बंधन मुझे आते हैं. फिर भी बिना उपदेश पाए दूसरों को वे कहें न जाय, यूँ उनका संकेत होने के कारण मैं उन बातों को प्रकट नहीं करूँगा.'' (४२)

उसी तरह एक बार जैन पंडित से चर्चा का अवसर आया परंतु 'उनकी श्रद्धा का नाश न हो' इस भाव से महाराज ने उनसे वाद-विवाद नहीं किया. अपि तु जैनधर्म के सूक्ष्म तत्वों कोहि उन महाभाव को समझाया. (४३)

इसी तरह अन्य संप्रदाय के संकेतों का भी महाराज श्रद्धा से पालन करते थे. इससे यह स्पष्ट हो उठता है कि उनके मन में मतभेदों के प्रति सहिष्णुता थी. और ''सभी धर्म ईश्वरनिर्मित हैं'' इस सिद्धान्तपर उनकी दृढ निष्ठा भी थी. अन्य धर्मों के प्रति हीनभाव उनमें न था और उनके संकेतों का वे आदर भी करते थे. इसी से उनकी मतभेद सहिष्णुता की परम सीमा प्रकट होती है.

श्रीगुरु के प्रति
आत्यंतिक निष्ठा का आग्रह

एक बार वर्धा के रामदासी संप्रदाय के श्रीधरबुआ परांजपेजी को महाराज ने वाद-विवाद में परास्त किया, तब उनके शिष्य महाराज की ओर उपदेश ग्रहण करने आए थे. किन्तु महाराज ने उन्हें अपने गुरु

के प्रति दृढ निष्ठा रखनेका ही उपदेश दिया.

उसी तरह देवास संस्थान के राजा तुकोजीराव पवार को लिखे पत्र में उनके गुरु शीलनाथ स्वामी के प्रति श्रद्धा रखने को कहा. (४४)

शीलनाथ स्वामी सोयरा सज्जन । तयांचे चरण आठवावे ॥
करावा जतन आपला विश्वास । काही आणिकांस स्मरूं नये॥

जिस प्रकार छत्रपति शिवाजीराजे संत तुकारामजी को शरण गए. तब उन्होंने छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदासजी के ही प्रति दृढ श्रद्धा बनाए रखने के लिए कहा था.

श्रीविश्वामित्र ने रामचंद्र को श्रीवासिष्ठ से उपदेश दिलवाया था, उसी प्रकार महाराज वृत्ति से निस्पृह और उचित मार्ग दिखलाने वाले थे. यही भारतीयों की अक्षुण्ण परंपरा है.

महाराज का आवाहन तथा
जीवन निष्ठा

श्रीनिवासशास्त्रीजी को लिखे पत्र में महाराज अपनी जीवननिष्ठा व्यक्त करते हैं. स्वयं लिखित ग्रंथों और प्रतिपादित सिद्धांतों की ओर उनके प्रखर आत्मविश्वास की उचित पहचान उनके पत्र से होती है. वे लिखते हैं -

''आमतौर से मूर्ख कहलानेवाला समाज मेरा भाषण समझ ही नहीं सकता. इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मैं धीरज के साथ कार्य कर रहा हूँ. उस बात को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता. मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि इतने लोग मेरे विरोधी है किन्तु उन सबके हृदय में सच्चा धर्मविश्वास नही हैं.'' (४५)

उसी पत्र में महाराज अपने अनुयायियों से सहायता की माँग करते हुए वे कहते हैं -

''**१** - किसी का भी नाम न लेकर, हिन्दूधर्म को गलत मार्ग पर ले जाने वालों का सप्रमाण खंडन किजिए.

२ - मेरे विचार उचित हैं इसका अच्छी तरह से अनुशीलन करने के बाद उसे लोगों को बताइए.

३ - जितना स्वयं को संभव हो उतना पारलौकिक अभ्यास करने का नियम रखें.

४ - आपद्धर्म के अनुसरण के लिए मेरे मतों को समझकर तदनुसार व्यवहार कीजिए. साथ ही पारलौकिक धर्म पर दृढ विश्वास

करना ही होगा.

५ - प्रमुख रूप से भगवद्भक्ति की स्थापना मधुराद्वैत के अनुसार करनी चाहिए.

६ - मेरे प्रासंगिक विचार समझ न आने पर निडर होकर अकेले में उस बारे में पूछकर तदनुसार कार्य करें. धर्म के प्रमुखों द्वारा सारे काम इसी तरह से हुआ करते हैं.

७ - मेरे ग्रंथों को मुद्रित करके प्रकाशित करें.

८ - हाथ से काम न बनता हो वहाँ जबान को इस्तेमाल करें.

९ - शब्दों का अध्ययन कहीं भी कीजिए. किन्तु आर्ष सिद्धांतों को मुझ से ही समझकर ग्रहण करें.''

१० - ''जो मुझसे छोटे हैं, उन्हों ने मुझे प्रमुख मानकर और मुझसे जो बडे हैं वे, अपने पुत्र के कार्य को अनुमोदन देना ही चाहिए ऐसा मानकर मुझे सहायता करे.'' (४६)

इस प्रकार से महाराज की भूमिका व्यक्त होती है. एक दूसरे स्थल पर अपने जीवन के राष्ट्रीय और सांस्कृतिक लक्ष्य को कडे शब्दों में उन्हों ने व्यक्त किया है -

११ - ''आर्यों के सिद्धान्तही अंतिम सत्य है, यह सिद्ध करने के सिवाय मुझे और आप जैसे मान्यवर मेरे हितचिंतकों को दूसरा कोई भी काम नहीं है. सांख्य, योग, वेदांत, जो कुछ हमारा है वह सारा यही है. और अन्य कार्यों को टालने वाला मैं इस काम को कभी नहीं टालता. मेरे जीवन में इतनी ही नियमितता आपने देखी होगी. अतः मैं अपना यह कार्य ठीक रीतीसे कर रहा हूँ ऐसे विश्वाससे आप मुझे सहायता कीजिए.'' (४७)

'मधुराद्वैत' संप्रदाय की स्थापना

'मधुराद्वैत' नाम से नये संप्रदाय की स्थापना करने की आवश्यकता क्या थी? इस प्रश्न का उत्तर महाराज बडी मार्मिकता से देते हैं.

वेदांत में आत्मानुभव के प्राप्ति की अनेक प्रक्रियाएँ बताई गई हैं किन्तु एक व्यक्ति के लिए एक ही प्रक्रिया उपयोगी होती है. इसी एक ही प्रक्रिया का उपयोग करने वाले अनेक व्यक्ति जब इकट्ठा हो जाते हैं, या परंपरा से वही प्रक्रिया सीखने लगते हैं तो संप्रदाय होता है. ऐसे एकहि क्या, अनेक संप्रदाय निकल पडें तों उसमें हानि क्या है, अच्छा

ही है.

उदा. - सभी एकहि पृथ्वीपर रहते हैं फिर अपना अपना घर अलग अलग क्यों बाँधा?

इस प्रश्न का उत्तर ही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है.

अपनी सुविधा अर्थात् अधिकार के अनुसार वेदांत की किसी भी प्रक्रिया को गुरु चुनते है या नवीन बनाएँ देते है - उसकी निष्ठापूर्वक साधना करना यह परमार्थ की और अनिवार्य कदम है - ऐसे गुरुपरंपरा को ही संप्रदाय कहते हैं. (४८)

पृथ्वी एक है किन्तु वही जमीनपर अपने अपने घर है, वैसे ही धर्म का अधिष्ठान- सत्वकी वृद्धि एक है किन्तु ईश्वर प्राप्ति के लिए उपासनामार्ग याने संप्रदाय भिन्न-भिन्न हैं. इनमे परस्पर विरोध की संभावनाहि नही है और यही वास्तविकता है.

संप्रदाय की रक्षा

महाराज अपने संप्रदाय की रक्षा के लिए निश्चिन्त हैं. वे कहते हैं - ''इस संप्रदाय के रक्षक तात श्रीज्ञानेश्वर और भगवान् श्रीकृष्ण हैं. अतः मैं संप्रदाय के रक्षा का दायित्व अन्य किसी को नहीं सौंपता. जिन्होंने मुझे यह संप्रदाय प्रदान किया है वे ही उसका रक्षण भी करेंगे. मेरे पास रहने वाले और अन्य महात्माओं सें मैं हाथ जोडकर वर माँगता हूँ कि जान बूझकर किसी को गलत न सिखाएँ. (४९)

महाराज के कथन से एक ही अर्थ स्पष्ट होता है, वह है कि कोई व्यक्ति हो या न हो महाराज के ग्रंथ ही संप्रदाय के नियामक है.

वैदिक परंपरा, भागवत संप्रदाय, वारकरी संप्रदाय को क्रमशः वेद, भागवत, ज्ञानेश्वरी आदि ग्रंथों ने ही अजरामर किया है. उसी तरह से यह मानने में कोई गलती नहीं होगी कि महाराज के संप्रदाय को उनके ग्रंथ ही आगे बढाने का कार्य करते रहेंगे.

महाराज का कडा अनुरोध है कि यह संप्रदाय में गुरु-शिष्य दोनों ही एक- दूसरे को सँभालें. वे कहते है कि मेरा पतन हुआ तो मुझे रोकिए किन्तु संप्रदाय के प्रति निष्ठा कम न होने दें. गोरक्षनाथ ने मच्छिन्द्रनाथ को स्त्री राज्य से छुडवा ही लिया था; उसी प्रकार मुझे भी सही मार्ग पर लाएँ. साथ ही मैं भी किसी अनुयायी के भूल करने पर उसे सजा दूँगा और सन्मार्ग पर लाऊँगा. क्योंकि श्रद्धा नाश का परिणाम बडा ही दुःखद और विपरीत होता है.'' (५०)

मन की कोमलता

महाराज के व्यक्तित्व में एक तरफ तर्कशील बुद्धि की तटस्थतातथा रुक्षता और दुसरी तरफ मृदु कोमलतम भावनाओं का मनोज्ञ मीलन दिखलाई देता है.

लोण्याहुनि मऊ आम्हीं विष्णुदास ।
कठीण वज्रास भेदू ऐसे ॥

संत तुकारामजी के इस कथन के अनुसार ही खंडन-मंडन में मग्न महाराज की आक्रमक वृत्ति की कठोरता, ज्ञानेश्वर माउली के स्मरण मात्र से पिघल जाती है और उनमें भक्तों में स्थित दंभरहित-मानरहित दशा से परिपूर्ण परमप्रेम की कोमल वृत्तियाँ उफनने लगती हैं. (५१)

ज्ञानेश्वरमाये आळंदीवल्लभे ।
पिशी पिशी लोभे होई माझ्या ॥

इस सारे विवेचन से यह दिखलाई देता है कि महाराज के कार्य की प्रेरणा अलग ही है. संत तुकारामजी की भूमिका थी -

आम्ही वैकुंठवासी । आलो याचि कारणासी ।

और महर्षि व्यासजी की भूमिका थी -

''मैं दोनों हाथ उठाकर लोगों को
उनके उद्धार का मार्ग बतला रहा हूँ , किंतु – ''

ये तीनों ही भूमिकाएँ एक ही साँचे से निकली हैं यह स्पष्ट ही है. साथ ही श्रीज्ञानेश्वरजी का यह कथन भी महत्त्वपूर्ण है कि -

खळांची व्यंकटी सांडो । सत्कर्मी रती वाढो ॥
भूतां परस्परें जडो । मैत्र जीवाचे ॥

ज्ञानेश्वरमाँ का यह कथन ही महाराज के हृदय की वास्तविक प्रेरणा है. श्रीव्यासजी ने वेदों के चार विभाग बनाए, पुराणों की पुनर्रचना की, योग्यता के अनुसार भिन्न भिन्न उपदेश भिन्न भिन्न लोगों को दिए, किन्तु उन सबकी एकसूत्रता कहीं भंग न होने दी. उसी प्रकार से महाराज ने भी सभी संप्रदायों के प्रति आदरभाव रखा, अलग-अलग दृष्टिकोन से अन्य विचारों का कभी समर्थन किया तों कभी विरोध किया. किन्तु विरोध करते हुए या बात को काटते हुए भी उसके स्वीकारणीय पक्ष की ओर दुर्लक्ष कभी नहीं किया. यह बडी अचरज की बात है. समन्वय के पक्की नीव पर उचित अवसर पर उचित व्यक्ति को उसकी उन्नति का मार्ग प्राचीन शास्त्र परंपरा के

अनुसार बतलाया. यही प्रक्रिया प्राविण्य महाराज की भूमिका का विशेष है. इस सारी पृष्ठभूमि पर ही महाराज के व्यक्तिरेखा का और अक्षर साहित्य का अवलोकन करना उचित होगा.

॥ श्रीमत्सद्गुरु बाबाजीमहाराजार्पणमस्तु ॥

***

संदर्भ टिप्पणियाँ

(य = यष्टि. महाराजके पुस्तकों के खण्डों को यष्टि नाम हैं)

* महाराज के शिष्य कै. श्रीभाऊसाहेब खापरेजी के अनुसार जन्मदिन ६ जुलाई १८८१. **१**. श्रीत्रिपुरवारकृत चरित्र भा. १ पृ. ४४-४५ **२.- ३.** प्रा. अ.स.जोशीकृत श्रीगुलाबरावमहाराज का अप्रकाशित चरित्र. **४**. नित्यतीर्थओव्या ८ ते १० व संप्रदायसुरतरु अ. ४ ओवी २८-२९ **५.** संप्रदायसुरतरु अ. २२ ओवी ७७८, **६**. संप्रदाय सुरतरु अ. २०, पृ २०७-२०८ **७**. खापरेंजी को पत्र, यष्टी १२ पृ. १०९ **८**. श्री हरदासजी को पत्र य २३, पृ. २९-३० **९.** य ८, पृ. १७८ **१०.** य ८, पृ. १८३ **११.** य ७, पृ. ११-१२ **१२.** य ८, पृ. २१४ **१३.** श्रीनिवासशास्त्री हरदासजी को पत्र य १२, पृ. ८६ **१४**. अभंगाची गाथा ५४९, पृ. १२६ **१५**. अभंगाची गाथा ५२०, पृ. १११ **१६.** अभंग गाथा ५७७, पृ. १२२ **१७.** अभंगगाथा ५२२, पृ. १११ **१८.** पत्र य ७, पृ. ४२ **१९.** य. १२, पृ. ३५-३६ **२०.** सूचना य. १ पृ. १५४ **२१**. पंचभाई मो फ. य १२ पृ. १८-१९-२० **२२.** पत्र ७ य, पृ. ४५ **२३.** पत्र ८, य१, पृ. ५२ **२४.** पत्र ५य १, पृ. ३९ **२५.** श्रीनिवासशास्त्री को पत्र ओवी २५-२६ य १५ **२६.** य २, २९ **२७.** श्रीनिवासशास्त्री को पत्र य २, उ, पृ. ३१ **२८**. हरदास को पत्र य २ उ, पृ. २५-२६ **२९.** संप्रदायसुरतरू अ, पृ. १७ **३०**. अभंगगाथा पृ. १२८ **३१.** य. ८, पृ. १७७ **३२.** य. ७ पृ. १०१ **३३**. य. ८ पृ. २०२ **३४**. य. ८ पृ. ७६ **३५**. य. १५, पृ. ३०९-३२१ **३६**. य. १२, पृ. २०७ **३७** य. १२, पृ. २०७-२१० **३८**. हरदास को पत्र य७, पृ. १५६- खापरे के पत्र में भी यही जानकारी है पाद टिप्पणी क्रमाकं ४७ देखिए. **३९.** स्वमंतव्यांश सिद्धांत तुषार, पृ. ८-१२ संस्करण २रा. **४०.** संप्रदासुरतरु अ. २० पृ. २०५-२०६ **४१.** श्री. मुळे, खापरे आदि को पत्र य ७, पृ. १३१ **४२.** श्रीबडबडे को पत्र य. १२, पृ. १७६ **४३**. श्रीगुलाबराव महाराज का चरित्र, पृ. १७६ **४४.** राजा तुकोजी पवार को पत्र य १२, पृ ३६ **४५.** हरदास को पत्र य. १२, पृ. ९३ **४६**. हरदास को पत्र १२, पृ. ९४ **४७**. खापरे को पत्र य ७, पृ. १५६ **४८.** संप्रदायसुरतरु अ. ६, ओवी १४४-४५, पृ. २०३ **४९**. सुखवरसुधा, पृ. ३ **५०.** संप्रदासुरतरु अ२० ओवी ४२५-४३१, पृ. २०७ **५१.** अभंगगाथा ६८२, पृ. १४६

०००

हिंदुत्व की भीषण पराजय

ईसा १८३४ मे **लार्ड मैकाले** भारत के शिक्षा-प्रमुख बने । उन्होंने पारंपरिक संस्कृत पाठशालाओं के अनुदान बंद किए और नए अंग्रेजी स्कूलों में संस्कृत अध्यनको, आंतरिक कुटिल नीति रखते हुएँ प्रोत्साहित किया । पिता को पत्र में उन्होंने लिखा है कि,

''मैंने बनायी पद्धति से यहाँ शिक्षाक्रम चलता रहा, तो आगामी ३० वर्षों में बंगाल में एक भी हिंदू नही बचेगा- सारे ख्रिस्ती बन जायेंगे। या फिर केवल पॉलिसी के लिए नाममात्र हिंदु- पॉलिटिकल हिंदु- बने रहेंगे. धर्मपर या वेदों पर उनकी श्रद्धा कतिपय नही रहेंगी ।''

''स्पष्ट रूप से हिंदुधर्म में हस्तक्षेप न करते हुए और बाह्यतः उनकी धार्मिक स्वतंत्रता को कायम रखते हुए, हमारा उद्दिष्ट पूरा सफल होगा.''

(१२-१०-१८३६)

भारतीय संविधान में बोए हुए **'सेक्युलरिझम्'** के और हमारे '**धर्मश्रद्धाहीन हिंदुत्व'** के बीज, मैकाले के इस पत्र में स्पष्ट रूपसे दृग्गोचर होते है ।

इस प्रकार, ईसाईयों ने योजनापूर्वक भारतीय शिक्षापद्धति को आमूलाग्र बदल डाला । सैन्यबल से पराजित भारत पर उन्होंने शैक्षणिक क्षेत्र में भी अतुलनीय विजय पायी । दुःख की बात यही हैं की शिक्षा के माध्यम से विजित भारतवर्ष आज भी बौद्धिक शृंखलाओं से मुक्त नहीं हुआ ।

मैक्समूलर के शब्द है -

"India has been conquered once,
but india must be conquered again and
the second conquest should be
a conquest by education."

अंग्रेजों ने मेकाले और मॅक्समूलर के इस भविष्य को भीषण सत्य में बदल डाला.

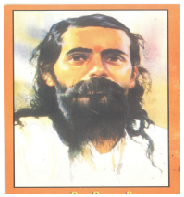

सर्वव्यापि समन्वय विचार

देश के सामाजिक बंधुभाव को
श्रीगुलाबरावमहाराजजी ने दिया हुआ
तात्त्विक अधिष्ठान याने यह समन्वयविचार!
इसके परिणाम दूरगामी रहेंगे ।
उन्होने विवेचन किया कि मुस्लिम, ख्रिस्ती,
पारसी, बौद्ध आदि सब के प्रमुखतत्व
वैदिक संस्कृति मे पाये जाते है जो कि उन
धर्मों से कही प्राचीन है ।
इस दिशा मे प्रबोधन हो तों
ना केवल भारतीय अपितु
पुरे विश्व के सभी धर्मोंके समाजों में
सामंजस्य पैदा होगा ।
महाराजजी का यह समन्वयविचार इतना
महत्वपूर्ण और प्रभावी है !

- परम पूजनीय श्री गुरूजी
(कै. मा. स. गोळवलकर)

प्रधानमंत्री अटलबिहारीजी वाजपेयी

***ज्ञान** कठिन है.*
ज्ञान गंभीर है.
ज्ञान शुष्क भी होता है.
ज्ञान कोरा अभिमान भी पैदा करता है.
***कर्म** कठिन कार्य है.*
कर्म के प्रति आसक्ति होती है.
*फिर उसके साथ फलपर भी दृष्टि रहती है. लेकिन् – **भक्ति** इन दोनोंसें अलग खडी है.*
उस में कुछ प्राप्ति का भाव नही है.
वह रसामृत से भरी हुयी है.
उस मे शुष्कता नही है.
सारे भेदों को मिटाती हुई भक्ति की लहर चलती है.
हम अपने इतिहास पर नजर डालें तों जब जब समाज का मानस कुंठित हुआ - या थोडा निराशा में डुबा, तों सारे देश में, केवल एक भाग में नहि, सभी भागों में, सभी भाषाओं में एक भक्ति की, साहित्य की लहर उठी. लोगों का मनोबल बढाया. भक्ति साहित्य की लहर से लोगों को शक्ति दियी थी.
वह भक्ति भगवान् से जुडी थी, इसलिए भक्त प्रार्थना करता था कि, ''जिन गुणों का समुच्चय हम भगवान् में देखते है, उसमें से एक अंश, एक छोटासा अंश, हमे भी प्राप्त हो.''
इस भाव से बडी शक्ति मिली.
श्रीगुलाबरावमहाराजने मधुर भक्ति की बात की. चिंतन की एक नयी दिशा खोली.

समन्वयमहर्षि

मुस्लिमों के तथा ईसाइयों के द्वारा समूचा देश भ्रष्ट होने के बाद भी आर्यधर्म बच रहा इस बात की कारणमीमांसा करते समय महाराज ''साधुबोध'' ग्रंथ में कहते है,

१) आर्य जानते है कि सभी धर्म आर्यधर्म के ही अधिकारानुरूप स्वरूप है.

२) जो अन्य धर्मों में नही, वह आर्य धर्म में हैं.

३) अन्य धर्मों मे जो हैं, वह आर्य धर्म में है.

४) आर्य धर्म में जो नहीं, वह अन्यत्र कहीं नही.(आर्यों के सहवास के कारण परधर्मीय भी यह जानने लगे है)

५) अन्यधर्मियों ने आर्यधर्म तोडने की कोशिश की, परन्तु आर्य धर्म ने किसी धर्म के विनाश का प्रयत्न नहीं किया.

दुनिया के विभिन्न धर्म आर्य धर्म के ही एकेक अंशपर स्थित है यह सिद्ध करके, सभी धर्मों पर पूरा आदर रखकर उन्होंने सर्वधर्मसमन्वय साधा, लेकिन साथ-साथ यह भी स्पष्ट किया कि, विभिन्न संप्रदायों का समन्वय होने के बाद भी वे परम्परा से न टूटते है, न नष्ट होते है. वे कायम रहते ही है. अपने-अपने धर्मपालन के लिये प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है. उस व्यक्ति को न स्वधर्म में कोई न्यूनता प्रतीत होती है न दूसरों से तत्त्व लेने की आवश्यकता.

ऐसी अद्‌भूत समन्वय क्षमता के कारण श्री गुलाबराव महाराज को **''समन्वय-महर्षि''** की उपाधि समुचित रहेगी. इस दूरदृष्टि की राष्ट्रनिर्मिति के कार्य में बहुत उपयोगिता सिद्ध होगी, यह निर्विवाद है.

- मा. दत्तोपंतजी ठेंगडी
भारतीय मजदूर संघ के संस्थापक तथा भूतपूर्व सांसद